PG HN S2-02 (DSC)

TWO YEAR MASTER'S DEGREE COURSE

(CBCS in Accordance with NEP 2020)

SEMESTER II

पाश्चात्य काव्यशास्त्र एवं समकालीन अवधारणा

हिंदी

Padmanath Gohainbaruah School of Humanities

KRISHNA KANTA HANDIQUI STATE OPEN UNIVERSITY

विषय विशेषज्ञ

प्रोफ़ेसर दिलीप कुमार मेधी, हिंदी विभाग, गौहाटी विश्वविद्यालय, असम

प्रोफ़ेसर अमूल्य बर्मन, हिंदी विभाग, कॉटन विश्वविद्यालय (सेवानिवृत्त विभागाधक्ष्य)

प्रोफ़ेसर भूषण पाठक, अध्यक्ष्य, बी. एस. कॉलेज, हाउली, बरपेटा, असम

पाठ्यक्रम समन्वयक : डॉ. प्रांजल कुमार नाथ, सहायक अध्यापक, कृष्णकांत हेंदिक राज्यिक मुक्त विश्वविद्यालय, असम

एसएलएम् तैयारी टीम

Units	**Contributors**
इकाइयाँ	**योगदानकर्ताओं के नाम**
1–2	डॉ. नंदिता दत्त, सहायक अध्यापक, नॉर्थ लखीमपुर विश्वविद्यालय
3	राजू सिंह, शोधार्थी, असम विश्वविद्यालय, डॉ.अब्दुल लतीफ, सहायक अध्यापक, कृष्णकांत हेंदिक राज्यिक मुक्त विश्वविद्यालय
4–6, 8–9, 14	राजू सिंह, शोधार्थी, असम विश्वविद्यालय
7	डॉ. कनिमा पाठक, सहायक अध्यापक, जागिरोड महाविद्यालय
10–11, 13	डॉ. प्रांजल कुमार नाथ, सहायक अध्यापक, कृष्णकांत हेंदिक राज्यिक मुक्त विश्वविद्यालय
12	डॉ. नवकांत दास, सहायक अध्यापक, रंगापारा महाविद्यालय

Editorial Team

Content : डॉ.प्रांजल कुमार नाथ, सहायक अध्यापक, कृष्णकांत हेंदिक राज्यिक मुक्त विश्वविद्यालय

Language : डॉ.अब्दुल लतीफ, सहायक अध्यापक, कृष्णकांत हेंदिक राज्यिक मुक्त विश्वविद्यालय

Structure & Format : डॉ.उज्जवल डेका बरुआ, सहायक अध्यापक, कृष्णकांत हेंदिक राज्यिक मुक्त विश्वविद्यालय

January, 2025 **ISBN :**

This Self Learning Material (SLM) of the Krishna Kanta Handiqui State University is made available under a Creative Commons Attribution-Non Commercial-ShareAlike4.0 License (International) : http.//creativecommons.org/licenses/by-nc-sa/4.0

Printed and published by Registrar on behalf of the Krishna Kanta Handiqui State Open University.

Headquarters: Patgaon, Rani Gate, Guwahati-781017
City Office: NH 37, Resham Nagar, Khanapara, Guwahati-781022 Web: www.kkhsou.in

CONTENTS

		Page No.
इकाई 1 :	**पाश्चात्य काव्यशास्त्र का स्वरूप एवं विकास**	7–15
	अर्थ एवं स्वरूप, पाश्चात्य काव्यशास्त्र का विकासक्रम।	
इकाई 2 :	**मध्ययुगीन कला-साहित्य-चिंतन**	16–22
	मध्ययुगीन पाश्चात्य कला साहित्य चिंतन- दांते, रूसो, टॉलस्टॉय, हेनरी।	
इकाई 3 :	**आधुनिकयुगीन कला-साहित्य-चिंतन**	23–27
	लेनिन, फ्रायड, मैक्सिम गोर्की, टी. एस. इलियट।	
इकाई 4 :	**अनुकरण सिद्धांत**	28–34
	प्लेटो का सामान्य परिचय, काव्यदृष्टि, अनुकरण सिद्धांत।	
इकाई 5 :	**त्रासदी सिद्धान्त**	35–38
	अरस्तु-सामान्य परिचय, त्रासदी सिद्धांत।	
इकाई 6 :	**संप्रेषण सिद्धांत**	39–43
	रिचड्र्स का सामान्य परिचय, संप्रेषण सिद्धांत।	
इकाई 7 :	**अभिव्यंजना सिद्धांत**	44–52
	अभिव्यंजनावाद, कला क्या है? कला और सहजानुभूति का संबंध, सौन्दर्यशास्त्र और आदर्शवादी दर्शन, सहाजानुभूति और अभिव्यंजना, सौन्दर्य - रूप और अन्तर्वस्तु का संबंध।	
इकाई 8 :	**निर्वैयक्तिकता सिद्धांत**	53–58
	इलियट का सामान्य परिचय, निर्वैयक्तिकता का सिद्धांत।	
इकाई 9 :	**स्वच्छंदतावाद (रोमांटिसिज़्म)**	59–70
	अर्थ, परिभाषा एवं स्वरूप, विशेषताएँ।	

इकाई 10 : मार्क्सवाद 71-78

कालमार्क्स - सामान्य परिचय, मार्क्सवाद और वर्ग-संघर्ष की धारणा, मार्क्सवाद की अवधारणा, मार्क्सवाद और फ्रैंकफर्ट स्कूल, मार्क्सवादी सिद्धांत।

इकाई 11 : प्रतीकवाद 79-86

प्रतीकवाद अवधारणा, प्रतीकवाद महत्व, लेखन में प्रतीकवाद के प्रकार, प्रतीकवाद और रूपक, प्रतीकों और रूपांकनों में अंतर।

इकाई 12 : कलावाद 87-92

स्वरूप एवं अवधारणा।

इकाई 13 : अस्तित्ववाद 93-102

अस्तित्ववाद की शुरुआत, अस्तित्ववाद का विस्तार, अस्तित्ववाद का स्वरूप , अस्तित्ववाद, अस्तित्ववाद की प्रमुख प्रवृत्तियाँ एवं विशेषताएँ।

इकाई 14 : समकालीन अवधारणाएँ 103-111

नयी समीक्षा, फंतासी या फैंटेसी, मिथक, प्रतीक, बिम्ब।

विषय परिचय

आपके समक्ष एम.ए. हिंदी के दो वर्षीय पाठ्यक्रम का पाचवाँ मूल पेपर (सेमेस्टर-II) **'पाश्चात्य काव्यशास्त्र एवं समकालीन अवधारणा'** अध्ययन के लिए प्रस्तुत है। यह पेपर पाश्चात्य काव्यशास्त्र पर आधारित है। विश्व के पश्चिमी देशों में निर्धारित की गई काव्य संबंधी मान्यताओं को पाश्चात्य काव्यशास्त्र कहा जाता है। जहाँ विश्व के प्राचीन और प्रसिद्ध दार्शनिक सुकरात, प्लेटो, अरस्तु आदि की साहित्यिक मान्यताओं के बारे में पढ़ा जा सकता है। इस पेपर में चौदह इकाईयाँ हैं।

इकाई 1 का शीर्षक **'पाश्चात्य काव्यशास्त्र का स्वरूप एवं विकास'** है। पाश्चात्य काव्यशास्त्र के विकास क्रम को मोटे तौर पर तीन भागों में बांटा जा सकता है। क्रमश: प्राचीनकालीन कला और साहित्य चिंतन, मध्ययुगीन पाश्चात्य कला और साहित्य चिंतन एवं आधुनिककालीन पाश्चात्य कला और साहित्य चिंतन। इस विकास क्रम में यूनान से लेकर अमेरिका तक के पाश्चात्य काव्यशास्त्रियों के विचारों का समावेश हुआ हैं। इस इकाई में पाश्चात्य काव्यशास्त्र का अर्थ और स्वरूप, पाश्चात्य काव्यशास्त्र का विकासक्रम तथा प्रमुख पाश्चात्य काव्यशास्त्रियों के बारे में आलोचना की गयी है।

इकाई 2 का शीर्षक **'मध्ययुगीन कला और साहित्य चिंतन'** है। मध्ययुगीन कला और साहित्य चिंतन के प्रमुख विद्वान् हैं- दांते, रूसो, टांलस्टाय और हेनरी। इस इकाई में इन चारों महान विद्वान के कला और साहित्य संबंधी विचारों पर प्रकाश डाला गया है।

इकाई 3 **'आधुनिकयुगीन कला और साहित्य चिंतन'** शीर्षक से है। पाश्चात्य साहित्य चिंतकों में लेनिन और फ्रायड का महत्वपूर्ण भूमिका है। इस इकाई में लेनिन, फ्रायड, इलियट और मैक्सिम गोर्की के कला और साहित्य संबंधी मान्यताओं पर विचार किया गया है। लेनिन के अनुसार वह कला, कला नहीं है जिसको कुछ लोग ही समझ सकें। कला वास्तव में जनता की थाली है और उसकी जड़ें श्रमशील जनता के बीच गहरी होनी चाहिए। वहीं कला या साहित्य है जिसे जनसाधारण समझे और प्यार करें।

फ्रायड मनोविश्लेषक थे। उन्होंने अचेतन मन, लिबिडो या काम-वृत्ति और ग्रन्थियाँ या वर्जनाएं इन विषयों पर गहराई से विचार किया है। इसी प्रकार मैक्सिम गोर्की और इलियट का नाम भी आधुनिक साहित्य चिंतकों में महत्वपूर्ण है।

इकाई 4 का शीर्षक **'अनुकरण सिद्धांत'** है। प्लेटो दार्शनिक होने के कारण वे सत्य के समर्थक थे। कवि और काव्य के प्रशंसक होते हुए भी, जो काव्य सत्य की कसौटी पर खरा नहीं उतरता, उसे वह हेय और निन्दनीय समझते थे। इस इकाई में प्लेटो और उनके सिद्धांत पर आलोचना की गयी है।

इकाई 5 **'त्रासदी सिद्धान्त'** शीर्षक से है। अरस्तु ने सबसे ज्यादा महत्व त्रासदी (ट्रैजेडी) को दिया है। वे कहते हैं- त्रासदी गंभीर स्वत: पूर्ण निश्चित आयाम से युक्त कार्य की अनुकृति का नाम है। यह समाख्यान रूप में न होकर कार्य-व्यापार रूप में होती है। इसका माध्यम नाटक के विभिन्न भागों में तदनुरूप प्रयुक्त सभी प्रकार के आभरणों से अलंकृत भाषा होती है। उसमें करूणा तथा त्रास के उद्वेग के द्वारा इन मनोविकारों का उचित विरेचन किया जाता है। इस इकाई में मूलत: त्रासदी सिद्धांत और अरस्तु के साहित्य संबंधी मान्यताओं को समाविष्ट किया गया है।

इकाई 6 का शीर्षक है **'संप्रेषण सिद्धांत'**। आई.ए. रिचर्ड्स संप्रेषण को कला का अनिवार्य गुण माना है। उनके उनुसार कला वह माध्यम है जिसके द्वारा कलाकार अपनी अनुभूतियों को दूसरों तक पहुँचाने का प्रयास करता है। इस इकाई में आई.ए. रिचर्ड्स और उनके सम्प्रेषण सिद्धांत पर आलोचना की गयी है।

इकाई 7 **'अभिव्यंजना सिद्धांत'** शीर्षक से है। सौन्दर्यशास्त्र के इतिहास में क्रोचे का हस्तक्षेप ऐसी घटना है, जिसने सौन्दर्य मीमांसा को दार्शनिक आधार दिया और लम्बे समय तक परवर्ती विचारकों के मन में इस भ्रम को जिंदा रखा कि कला और साहित्य एक पूर्णत: स्वतन्त्र एवं स्वायत्त दुनिया होती है, जो न केवल अन्य भौतिक प्रपंचों से भिन्न होती है, अपितु उसका निषेधक

भी होती है। आज उस विचार को 'कला कला के लिए' अथवा 'अभिव्यंजनावाद' के नाम से जाना जाता है। इस इकाई में क्रोचे का कला संबंधी विचार और अभिव्यंजनावाद, कला और सहजानुभूति, सहजानुभूति और अभिव्यंजना तथा रूप और अन्तर्वस्तु के बीच के संबंध को स्पष्ट किया गया है।

इकाई 8 '**निर्वैयक्तिकता सिद्धांत**' शीर्षक से है। टी. एस. इलियट का सिद्धांत है- निर्वैयक्तिकता सिद्धांत। इस सिद्धांत के अनुसार निर्वैयक्तिकता की स्थिति में कला विज्ञान के निकट पहुँच जाती है। इस इकाई में टी. एस. इलियट और उनके काव्य संबंधी धारणाओं पर विचार किया गया है।

इकाई 9 '**स्वच्छंदतावाद (रोमांटिसिज़्म)**' शीर्षक से है। विलियम वड्र्सवर्थ को ही स्वच्छंदतावादी काव्यधारा का प्रवर्तक माना जाता है। अंग्रेजी आलोचना में 'रोमांटिसिज़्म' शब्द का प्रयोग 18 वीं सदी के अंत में उभरी एक विशिष्ट प्रवृति के लिए हुआ जो मुख्य रूप से कविता के क्षेत्र में प्रतिफलित हुई किन्तु जिसने साहित्य तथा कला के अन्य क्षेत्रों पर भी गहरा प्रभाव छोड़ा। इस इकाई में स्वच्छंदतावाद को लेकर विद्वानों के मत तथा साहित्य में स्वच्छंदतावाद की भूमिका पर आलोचना की गयी है।

इकाई 10 का शीर्षक '**मार्क्सवाद**' है। कार्ल मार्क्स के साम्यवादी विचारधारा ही मार्क्सवादी विचारधारा के रूप में जानी जाती है। मार्क्सवाद एक सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक दर्शन है, जो श्रमिकों पर शासक वर्ग के प्रभाव का विश्लेषण करता है। यह श्रमिकों पर हो रहे अन्याय का विरोध करने के लिए प्रेरित करता है। इस इकाई में कार्ल मार्क्स, मार्क्सवाद और मार्क्सवादी चिंतकों की रचना दृष्टि पर आलोचना की गयी है।

इकाई 11 '**प्रतीकवाद**' शीर्षक से है। प्रतीकवाद का लक्ष्य प्रतीकात्मकता द्वारा विचारों और भावनाओं को व्यक्त करना था, विशेष रूप से पेंटिंग, कविता और साहित्य में। इस इकाई में प्रतीकवाद का अर्थ, स्वरूप तथा महत्व को स्पष्ट किया गया है।

इकाई 12 '**कलावाद**' शीर्षक से है। कलावाद 'कला कला के लिए' मान्यता पर आधारित कला के प्रति एक दृष्टिकोण है। कलावादियों के अनुसार कलाकार लोकोत्तर प्राणी, कला लोकातीत वस्तु तथा कलाजन्य आनंद, अलौकिक आस्वादयुक्त एवं समाज निरपेक्ष होता है। इस इकाई में कलावाद की विशेषताएँ और स्वरूप तथा साहित्य में इसकी उपयोगिता के बारे में चर्चा की गयी है।

इकाई 13 का शीर्षक '**अस्तित्ववाद**' है। किसी विशेष विचार या प्रत्यय के स्थान पर व्यक्ति के अस्तित्व को महत्व देने वाले दर्शन को अस्तित्ववाद के नाम से जाना जाता है। इस दर्शन के अनुसार सारे विचार या सिद्धान्त व्यक्ति की चिन्ता के ही परिणाम हैं। इस इकाई के अंतर्गत अस्तित्ववाद के इतिहास, स्वरूप, प्रमुख अस्तित्ववादी चिंतकों की दृष्टिकोण तथा साहित्य में अस्तित्ववाद की भूमिका पर विचार प्रस्तुत है।

इकाई 14 अर्थात् अंतिम इकाई का शीर्षक '**समकालीन अवाधारानाएँ**' है। नयी समीक्षा में किसी रचना के ऐतिहासिक और सामाजिक पक्ष पर विचार करने को अनावश्यक माना गया। रचना से हटकर रचनाकार पर जोर देने का भी विरोध किया गया। इस इकाई में नयी समीक्षा के विचारों और विशेषताओं पर विशेष बल दिया गया है।

प्रत्येक इकाई में '**अपनी प्रगति जांचें**' शीर्षक से कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न को अभ्यास प्रश्न के अतिरिक्त शामिल किया गया है और प्रत्येक प्रश्न के उत्तर का रूपरेखा '**प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)**' शीर्षक से सारांश के बाद प्रस्तुत किया गया है। इसका उद्देश्य विद्यार्थियों में नए-नए प्रश्न और उन प्रश्नों के समाधान के लिए आत्मविश्वास पैदा करना है तथा प्रत्येक इकाई में बॉक्स के अंदर '**महत्वपूर्ण बिंदु**' शीर्षक से कुछ तथ्यों को सम्मिलित किया गया है। इससे विद्यार्थी इकाई के महत्वपूर्ण तथ्यों से आसानी से परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

इसके अतिरिक्त प्रत्येक इकाई के अंत में '**अधिक जानने के लिए पढ़ें**' शीर्षक से कुछ महत्वपूर्ण पुस्तकों की सूची दी गयी हैं, जो प्रत्येक विद्यार्थी के लिए अत्यावश्यक है। विषय की गहरी जानकारी के लिए सारी पुस्तकें महत्वपूर्ण हैं।

इकाई 1 : पाश्चात्य काव्यशास्त्र का स्वरूप एवं विकास

इकाई की रूपरेखा

1.1 उद्देश्य

1.2 प्रस्तावना

1.3 पाश्चात्य काव्यशास्त्र

- 1.3.1 अर्थ
- 1.3.2 स्वरूप

1.4 पाश्चात्य काव्यशास्त्र का विकासक्रम

- 1.4.1 पाश्चात्य काव्यशास्त्र का प्राचीन काल
- 1.4.2 मध्ययुगीन पाश्चात्य कला और साहित्य चिंतन
- 1.4.3 आधुनिककालीन पाश्चात्य कला और साहित्य चिंतन

1.5 सारांश

1.6 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

1.7 अधिक जानने के लिए पढ़े

1.8 अभ्यास प्रश्न

1.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप-

- पाश्चात्य काव्यशास्त्र के अर्थ एवं स्वरूप के बारे में जानेंगे।
- पाश्चात्य काव्यशास्त्र की विकास यात्रा से अवगत होंगे।
- साथ ही कुछ महत्वपूर्ण पाश्चात्य काव्यशास्त्रीय रचनाकारों के रचनाकर्म से परिचय प्राप्त करेंगे।

1. 2 प्रस्तावना

काव्यशास्त्र को कविता की कसौटी मानी जाती है, भारत में काव्यशास्त्र का अत्यंत पुराना और समृद्ध इतिहास रहा है। भारत के जैसे पाश्चात्य में भी साहित्य में काव्यशास्त्र का एक महत्वपूर्ण स्थान है। इस इकाई में हम पाश्चात्य काव्यशास्त्र के विकास यात्रा का अध्ययन करेंगे। किस प्रकार पाश्चात्य में काव्यशास्त्र परंपरा का प्रारंभ हुआ और कैसे वह आगे जाकर विकसित हुआ, इन सब बातों की यहाँ चर्चा की जाएगी। साथ ही यहाँ इस विषय की भी चर्चा की जाएगी कि पाश्चात्य काव्यशास्त्र में कविता के लिए कैसी मान्यताओं को निर्धारित किया गया है और पाश्चात्य के काव्यशास्त्रीयों के काव्य तथा साहित्य संबंधी मत कैसे थे ? पाश्चात्य काव्यशास्त्र

के विकास क्रम को मोटे तौर पर तीन भागों में बांटा जा सकता है। क्रमशः प्राचीन कालीन कला और साहित्य चिंतन, मध्ययुगीन पाश्चात्य कला और साहित्य चिंतन एवं आधुनिककालीन पाश्चात्य कला और साहित्य चिंतन। इस विकास क्रम में यूनान से लेकर अमेरिका तक के पाश्चात्य काव्यशास्त्रीयों के विचारों का समावेश हुआ हैं, जिसकी विस्तृत चर्चा आगे की जाएगी।

1.3 पाश्चात्य काव्यशास्त्र

पाश्चात्य काव्यशास्त्र के इतिहास के बारे में जानने से पहले इसका अर्थ एवं इसके स्वरूप के बारे में जानकारी प्राप्त कर लेना जरूरी है।

1.3.1 अर्थ

पाश्चात्य का अर्थ होता है- पीछे का अथवा पश्चिम के देश और काव्यशास्त्र का अर्थ होता है वह शास्त्र जिसमें काव्य संबंधी विविध मान्यताओं का चर्चा की जाती हैं और जहाँ उसके प्रभावों, क्षेत्र और मान्यताओं का उल्लेख होता है। इस दृष्टि से देखा जाए तो पाश्चात्य काव्यशास्त्र का अर्थ होगा विश्व के पश्चिमी देशों में निर्धारित की गई काव्य संबंधी मान्यताएँ। जहाँ विश्व के प्राचीन और प्रसिद्ध दार्शनिक सुकरात, प्लेटो, अरस्तु आदि की साहित्यिक मान्यताओं के बारे में पढ़ा जा सकता है।

1.3.2 स्वरूप

पाश्चात्य काव्यशास्त्र वह शास्त्र है जहाँ हमें पश्चिम के विविध देशों के काव्य संबंधी मान्यताओं के बारे में पढ़ने का अवसर प्राप्त होता है। इस कड़ी में यह भी उल्लेख किया जा सकता है कि पश्चिम के देशों में भी शुरुआत में काव्य का ही दौड़ चला था, इसलिए प्राचीन एवं मध्यकालीन दार्शनिकों और विचारकों के ग्रंथों में काव्य संबंधी मान्यता ही प्राप्त होती हैं। आधुनिक युग तक आते-आते गद्य की अनेक विधाओं का जन्म हुआ और आधुनिक युगीन विचारकों ने उनपर अपना मत रखा। इसी सिलसिले में कई नवीन मान्यताएँ, विविध वाद जैसे मार्क्सवाद, मनोविज्ञान अस्तित्ववाद आदि का नाम हमारे सामने आते हैं।

1.4 पाश्चात्य काव्यशास्त्र का विकासक्रम

भारतीय काव्यशास्त्र परंपरा की भांति पाश्चात्य काव्यशास्त्र परंपरा भी प्राचीन एवं समृद्ध है। यह एक सुदीर्घ परिक्रमा है, जहाँ अनेकों दार्शनिक एवं अध्येता और साहित्यकारों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

1.4.1 पाश्चात्य काव्यशास्त्र का प्राचीन काल

आलोचकों के अनुसार पाश्चात्य काव्य चिंतन का श्री गणेश यूनान में हुआ था। समस्त यूरोप के महान कवि तथा यूनान का सबसे पहला महाकवि होमर था। जिनकी विश्व प्रसिद्ध दो रचनाओं का नाम हैं क्रमश: इलियड और ओडेसी। होमर का समय ईसा पूर्व नवीं शताब्दी मानी जाती है। उनकी रचनाओं का मूल उद्देश्य सहृदय को आनंद प्रदान करना है, जहाँ समकालीन यूनानी धर्म, दर्शन एवं संस्कृति का चित्रण हुआ है। इसी क्रम में हेसियड की रचनाएँ प्राप्त होती है जिनका समय ईसा पूर्व आठवीं शताब्दी मानी जाती है। इनके द्वारा रचित प्रसिद्ध ग्रंथ का नाम है थियोगोनी। उनके अनुसार साहित्य में नैतिकता का होना आवश्यक है। साहित्य का उद्देश्य मनुष्य को केवल आनंद प्रदान करना ही नहीं, बल्कि शिक्षा प्रदान करना भी होता है। इसके अतिरिक्त यूनानी गीतिकार पिंडर का नाम यहाँ महत्वपूर्ण है, जिनका समय ईसा पूर्व छठी और पांचवी शती के बीच माना जाता है। उनकी प्रसिद्ध कृति एपिनिसिया (विजय गीत) से परवर्ती कई लेटिन कवि तथा प्रसिद्ध कवि होरेस से प्रभावित हुए थे।



महत्वपूर्ण बिंदु

- यूनान का सबसे पहला महाकवि होमर था।
- होमर की दो रचनाएँ क्रमश: इलियड और ओडेसी हैं।

अरिस्टोफेन्स - इसके परवर्ती विचारकों में अरिस्टोफेन्स का नाम विशेष महत्वपूर्ण है। इनका समय 445 ई. पू. से लेकर 385 ई.पू. तक माना जाता है। ये मनोविनोदी और व्यंग्य-लेखक था। कहा जाता है कि इन्होंने 54 हास्य नाटक लिखे थे परंतु इनमें से केवल 19 ही प्राप्त हैं। अपने नाटकों में अरिस्टोफनीज ने प्रसिद्ध आलोचक एवं दार्शनिक सुकरात और युरिपिडीस की हंसी उड़ाई है; जिन्होंने लोगों को नये ज्ञान का संदेश दिया था। अरिस्टोफेन्स ने यह कहा था कि साहित्य रचना में कल्पनाशीलता का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है, परंतु साहित्य चमत्कार प्रदर्शन के लिए नहीं होना चाहिए। उन्होंने कृत्रिम शब्दावली और बनावटीपन को नकारा था।

सुकरात : (469 ई.पू. से 399 ई.पू.) सुकरात एक संत, महात्मा और दार्शनिक व्यक्ति थे। उनके मतों में कहीं भी प्रत्यक्ष काव्यशास्त्र संबंधी मत नहीं पाए जाते हैं। उनका मानना यह था कि शिक्षा हमारी सद्गुणों को विकसित करती हैं और ज्ञान हमें सही मार्ग तक ले जा सकता हैं। इन्होंने अपने युग के युवाओं के मन में नैतिक संस्कार जगाने का प्रयास किया था। सुकरात की चिंतन का प्रतिफलन उनके शिष्य प्लेटों के विचारों में उभर कर आया है।

प्लेटो - प्लेटो सुकरात के शिष्य थे। पाश्चात्य काव्यशास्त्र में प्लेटो की चिंतन का बड़ा ही महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इनके द्वारा लिखित रिपब्लिक नामक ग्रंथ अत्यंत चर्चित है। प्लेटो का जन्म ई.पू. 428 में हुआ था, इनके पिता अरिस्टोन और माता पेरिक्तियोन थे। प्लेटो महान दार्शनिक सुकरात के अनुयायी थे। वे सुकरात के विचारों और आदर्शों से प्रभावित थे। नई पीढ़ी को पथ भ्रष्ट करने के अपराध में जब सुकरात को मृत्युदंड दिया गया था, उस घटना के बाद प्लेटो का सक्रिय राजनीति से विश्वास उठ गया था और वह एथेंस छोड़कर बाहर चले गए थे। अनेक यात्राएं करने के बाद वे वापस एथेंस लौट कर आते हैं और वही ई.पू. 387 अकादमी की स्थापना करते हैं, जो यूरोप की सबसे पहली यूनिवर्सिटी मानी जाती है। इस अकादमी का उद्देश्य था दार्शनिक और वैज्ञानिक अनुसंधान को व्यवस्थित ढंग से विकसित करना। जीवन के अगले 40 वर्षों तक प्लेटो ने इसी अकादमी में रहकर अध्ययन, अध्यापन तथा शोध कार्य किया। कहां जाता है कि बिना किसी आलेख के ही वे अकादमी में अध्यापन करते थे। ऐसे महान विचारक और दार्शनिक की मृत्यु ई.पू. 347/348 में एक वैवाहिक भोजन के दौरान होती है।

अब आते हैं प्लेटो के विचारों की तरफ-प्लेटो दैवी प्रेरणा पर विश्वास रखते थे। प्लेटो का मानना था कि प्रत्येक कवि दैवी प्रेरणा से प्रेरित होकर ही कविता लिखता है। आपने कविता में उच्च भावना उच्च विचार और ज्ञान का होना अनिवार्य माना है और इसके विपरीत निम्न कोटि के काव्य को समाज के लिए अहितकर माना है। प्लेटो कला को अनुकृति मानते हैं। उनके अनुसार कवि या कलाकार वास्तविक साहित्य से तीन गुणा दूरी पर स्थित होता है। इसे समझने के लिए एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है - प्लेटो के विचार में ईश्वर ही प्रथम और परम सत्य है, प्रकृति या सृष्टि उसकी अनुकृति है, और कवि या कलाकार इस अनुकृति अर्थात प्रकृति और जीवन से प्रेरित होकर अपनी रचना करते हैं। अत: इस प्रकार कवि या कलाकार की रचना वास्तविक सत्य से तीन गुना दूरी पर स्थित होती है। आपने व्यक्ति के जीवन में संगीत का बड़ा महत्वपूर्ण योगदान माना है।

अरस्तू - प्लेटो के बाद जो महत्वपूर्ण नाम यूनानी काव्यशास्त्र में आता है, वह है अरस्तु। अरस्तु का काव्य शास्त्रीय विवेचन यूनानी काव्यशास्त्र को एक नया दिशा प्रदान करता हुआ नजर आता है। अरस्तु का विख्यात ग्रंथ पोएटिक्स के दो भाग हैं, जहाँ पहले में नाटक (ट्रेजेडी) और दूसरे में महाकाव्य (एपिक) पर विचार किया गया है। उनके द्वारा लिखित दूसरी पुस्तक रिटोरिक में अलंकार तथा वक्तव्य कला पर विचार किया गया है। अरस्तु के अनुसार काव्य का उद्देश्य आनंद प्रदान करना और उपदेश प्रदान करना होता है। प्लेटो के मत का खंडन करते हुए अरस्तु कहते हैं कि काव्य प्रकृति की अनुकृति है, परंतु यह एकदम नकल न होकर उसका पुन: सृजन है।

इस तरह अरस्तू ने काव्य तथा काव्य की मौलिकता को स्वीकारा है। अरस्तु का विरेचन सिद्धांत अत्यंत प्रसिद्ध और लोकप्रिय रहा है। उन्होंने विषादांत नाटक द्वारा व्यक्ति मन की भावनाओं का परिष्करण संभव माना है।

लोंजाइनस - अरस्तु के बाद लोंजाइनस यूनान के महान विचारक एवं काव्यशास्त्री माने जाते हैं। इनका समय ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी मानी जाती है। आपने काव्य में एक नवीन तत्व का प्रतिपादन किया था जिसका नाम है उदात्त तत्व, अपने ग्रंथ पेरिइप्सुस (ऑन दा सब्लाइम) में इन्होंने उदात्त तत्व के बारे में विस्तृत रूप से चर्चा की है। लोंजाइनस के अनुसार महान रचनाकार के लिए उनकी रचना में उदात्त भाव और उदात्त शैली का होना अत्यंत आवश्यक है। जब विचार और भावों में उदात्तता होगी, तभी वह रचना समाज के लिए प्रभावकारी और महान सिद्ध हो सकता है। लोंजाइनस ने आनंदानुभुति को ही कला की मूल शक्ति मानी है और कहा है कि कवि कल्पना द्वारा ही अपनी अनुभूति को पाठकों तक प्रेषित करने का प्रयास करता है।



महत्वपूर्ण बिंदु

- अरस्तु ने 'विरेचन सिद्धांत' का प्रतिपादन किया था।
- लोंजाइनस के सिद्धांत का नाम है- 'उदात्त सिद्धांत'।

1.4.2 मध्ययुगीन पाश्चात्य कला और साहित्य चिंतन

मध्ययुगीन पाश्चात्य कला साहित्य चिंतन में प्राचीन काल की तुलना में कुछ अलग और मौलिक विचारधारा देखने को मिलती है, जहाँ नवीनता के प्रति आग्रह परिलक्षित होता है। इस युग के जिन प्रमुख इटेलियन काव्यशास्त्रीयों का नाम हमारे सामने आते हैं, वे हैं- दांते, कैसेल वेत्रो एवं टोरक्वाटो टैसो।

दांते ने लैटिन भाषा में अपनी भावों को प्रकाशित न करते हुए तत्कालीन समय की बोलचाल की भाषा इतालवी में अपना महाकाव्य लिखा जो कि उसे समय काफी लोकप्रिय रहा। दांते द्वारा किया गया यह कार्य महाकवि तुलसीदास द्वारा लिखित रामचरितमानस के समान ही था। आप केवल कवि अथवा विचारक ही नहीं थे, बल्कि एक राजनीतिक नेता और प्रशासक भी थे। दांते के अनुसार उत्तम काव्य की भाषा परिष्कृत और अभिव्यक्ति भी उत्तम होनी चाहिए। आगे आने वाले इकाई में दांते पर विस्तृत चर्चा की जाएगी।

कैसेल वेत्रो ने महाकाव्य को अत्यंत महत्वपूर्ण माना है। अपने महाकाव्य के दो भेद माने हैं- चरित महाकाव्य और काल्पनिक महाकाव्य। आपके अनुसार महाकाव्य का आधार ऐतिहासिक हो तो अच्छा है। इस संदर्भ में टैसो का विचार उल्लेखनीय है,

इनके अनुसार महाकाव्य की घटना समसामयिक नहीं होनी चाहिए और न ही अत्यधिक काल्पनिक होनी चाहिए। उत्तम महाकाव्य की घटना किसी न किसी रूप में ऐतिहासिक होनी चाहिए।

मध्यकालीन फ्रांसीसी साहित्य चिंतन में रूसो, सेंट ब्यूव, वाल्टेयर, देनिस दिंदरो, चार्ल्स बादलेयर, स्टीफेन आदि उल्लेखनीय है। इनमें से सबसे अधिक चर्चा रूसो की विचारों की हुई है। जिनका विस्तृत अध्ययन हम आने वाले इकाई में करेंगे। पाश्चात्य साहित्य में रूसो का विचार अत्यंत महत्वपूर्ण है। रूसो अपने विचारों के कारण स्वच्छंदतावादी आंदोलन के जनक भी माने जाते हैं। आपके अनुसार प्रकृति के सौंदर्य को काव्य में महत्वपूर्ण स्थान मिलना चाहिए, साथ ही साथ रूसो ने व्यक्ति भावना को भी महत्व दिया है।

इसके बाद **बादलेयर** का विचार महत्वपूर्ण माना जाता है, बादलेयर के अनुसार कवि किसी संस्था का नहीं होता है। काव्य अमर होता है, कविता अपने सुखात्मक और दुखात्मक अनुभूति द्वारा पाठकों की हृदय को स्पर्श करता है। आपने अपने विचारों में कल्पना को एक महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है और नई परंपराओं का स्वागत किया है।

इसके बाद आते हैं मध्यकालीन स्पेनी साहित्य चिंतन जहाँ लुई बिवो, ओरोगन, अल्बर्टो लिस्टाई आदि प्रमुख हैं।

मध्यकालीन जर्मन कला साहित्य चिंतन में बौमगार्टन, जे. बी. सुल्जर, हाइन्स, इमैनुअल कांट, गेटे आदि उल्लेखनीय हैं। गेटे जर्मन भाषा के सर्वश्रेष्ठ कवियों में है जिनकी कविता की सराहना विश्व का प्रत्येक आलोचक करते हैं। आपने प्रेम और अनुभूति को अपने काव्य में स्थान दिया और कलात्मक रचना की प्रक्रिया में बुद्धि और कल्पना का समावेश किया था।

इसी क्रम में पाश्चात्य कला चिंतन में रूसी, अमरीकी और अंग्रेजी कला चिंतकों ने भी अपना योगदान दिया है। जिनमें से रूसी कला चिंतकों में निकोलाई, काउंट लियो टालस्टाय आदि का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। अमरीकी कला चिंतकों में एडगर एलेन पो, लाबेल, ई. सी. स्टेडमैन आदि का नाम लिया जाता हैं। मध्ययुगीन अंग्रेजी कला और साहित्य चिंतन के विकास में कई ऐसे महत्वपूर्ण नाम रहे हैं, जिनका इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। उनमें से कुछ प्रमुख इस प्रकार हैं – सैमुअल डेनियल, लार्ड बेकन, बेन जानसन, जॉन डाइड्रन, विलियम वड्र्सवर्थ, सैम्युअल टेलर कॉलरिज, मैथ्यू अर्नाल्ड आदि।



अपनी प्रगति जांचें

प्रश्न 1. पाश्चात्य काव्यशास्त्र में प्लेटो और अरस्तु के महत्व को रेखांकित कीजिए।

1.4.3 आधुनिककालीन पाश्चात्य कला और साहित्य चिंतन

आधुनिकयुगीन पाश्चात्य कला और साहित्य चिंतन का समय 19वीं शताब्दी से माना जाता है। आधुनिक युग में औद्योगिक क्रांति तथा तकनीकी एवं वैज्ञानिक क्षेत्र में आए विकास के फल स्वरूप कला और साहित्य के क्षेत्र में भी काफी बदलाव आए। इस युग के विचारकों ने अपनी आलोचना में नवीन विचारधाराओं को शामिल किया। आधुनिक युग का दर्शन, साहित्य तथा कला- चिंतन विश्व में अनेक भागों में बटता हुआ नजर आता है।

मार्क्सवादी साहित्य तथा काव्य चिंतन इस युग का एक महत्वपूर्ण अंश रहा है। कार्ल मार्क्स के चिंतन ने संपूर्ण विश्व को एक नया आयाम प्रदान किया था। आप एक महान दार्शनिक और विचारक थे साथ ही साथ आपके विचार में व्यवहारिकता का समावेश देखने को मिलता है। कार्ल मार्क्स के अनुसार इस संसार में केवल दो ही वर्ग है- एक है शोषक और एक है शोषित। कार्ल मार्क्स की संपूर्ण विचारधारा में समानता को ही महत्व प्रदान किया गया है। वे यही प्रतिपादित करना चाहता है कि इस संसार में सभी का स्थान समान हो। आपका मानना यह है कि कला- साहित्य का सृजन व्यक्तिगत चेतना का परिणाम न होकर सामाजिक चेतना का परिणाम है।

आधुनिक युगीन कला साहित्य चिंतन के क्षेत्र में मैक्सिम गोर्की का नाम भी बड़े आदर के साथ लिया जाता है। सन 1906 में इनकी जगजाहिर कृति माँ विश्व के सामने आता है, माँ को समग्र विश्व से अपार प्रेम और प्रशंसा मिला। मैक्सिम गोर्की के अनुसार कला, साहित्य की रचना के लिए कल्पना, ज्ञान तथा नवीन दृष्टि का होना अनिवार्य है। भाषा के क्षेत्र में इन्होंने जन सामान्य के बीच प्रचलित भाषा को महत्व दिया है। इसके अतिरिक्त और भी कई विचारक और साहित्यकार आए जिनका इस काल में महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

आधुनिक कालीन पाश्चात्य कला और साहित्य चिंतन में मनोवैज्ञानिक कला, साहित्य-चिंतन का भी एक दौड़ चला। इन विचारों में व्यक्ति मन की सत्ता के अंतर्निहित भावों पर प्रकाश डाला गया है। मानव मन के अन्तर्द्वंद एवं अन्य संघर्ष, टकराव आदि का विश्लेषण इनके सिद्धांतों में पाए जाते हैं। इस संदर्भ में फ्रायड का नाम सबसे पहले लिया जाता है। फ्रायड के ग्रंथों में मनोविश्लेषण का तीन रूप पाया गया हैं - अचेतन मन, काम वृत्ति एवं ग्रंथियां। फ्रायड के इस आविष्कार ने मनोवैज्ञानिक

एवं मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सकों के लिए एक नई राह खोल दी। जिससे उनका काम थोड़ा आसान बन गया।

इस कड़ी में अगला साहित्य चिंतन जुड़ता है अस्तित्व वाद का, यह एक संपूर्ण नवीन धारा थी। इनका मानना था कि मानव अस्तित्व ही सर्वोपरि है। मनुष्य ही वास्तव में केवल एक ऐसा सत्य है, जिसका अस्तित्व होता है। अन्य पदार्थ एवं वस्तु आदि का अस्तित्व नहीं होता है।

इस संदर्भ में सोरेन कीर्केगार्ड, ज्यां पाल सात्र, अल्बैर कामू आदि का नाम बड़ा ही चर्चित है। अस्तित्ववाद में दो पक्ष देखे जाते हैं- एक धार्मिक और दूसरा नास्तिक।

सोरेन कीर्केगार्ड धार्मिक अस्तित्ववादी थे, परंतु मार्टिन हेडेगर नास्तिक अस्तित्ववादी थे। अस्तित्व बाद का मूल तत्व स्वतंत्रता है। अस्तित्ववादी यह मानते हैं कि सभी मूल्य मानव सापेक्ष है। मनुष्य ही अपने आप का निर्माता है और अपने कार्यों का निर्धारण वह स्वयं करता है। नास्तिक अस्तित्ववादी विचारक ईश्वर के अस्तित्व को नहीं मानते हैं।

आधुनिक युगीन पाश्चात्य कला चिंतन की यात्रा विशाल है और अब भी विकासरत है। इस कड़ी में कुछ और महत्वपूर्ण नामों का उल्लेख किया जा सकता हैं, जिन्हें आधुनिक युग के शुद्ध साहित्य विचारक माने जाते हैं - बेनेडेटो क्रोचे, एजरा पाउंड, टी. एस. इलियट, आई. ए. रिचर्ड्स आदि।



1.5 सारांश

पाश्चात्य काव्य और कला चिंतन परंपरा की यात्रा अत्यंत प्राचीन और समृद्ध रही है। इस यात्रा को मूलत: तीन भागों में बांटा जा सकता है। प्राचीन मध्ययुगीन और आधुनिककालीन। यहाँ हमें यूरोप की विचारधारा से परिचय होने का अवसर प्राप्त हुआ। यूनान में शुरू होने वाली इस यात्रा में यूरोप के प्राय: सभी देश शामिल हैं। अनेक विचारकों ने अपने काव्यगत विचारों से इसे एक नवीन ऊर्जा प्रदान की हैं। सुकरात और प्लेटो से लेकर क्रोचे और एलियट तक की यह परंपरा विकासशील रही है। प्राचीन काव्य कला चिंतकों ने जिन मान्यताओं को ग्रहण किया था मध्ययुग तक आते-आते उनका खंडन होने लगा और आधुनिक युग में कुछ नई युग सापेक्ष मान्यताओं को ग्रहण किया था।

1.6 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न 1 का उत्तर : पाश्चात्य काव्यशास्त्र में प्लेटो की चिंतन का बड़ा ही महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इनके द्वारा लिखित रिपब्लिक नामक ग्रंथ अत्यंत चर्चित है। प्लेटो का जन्म ई.पू. 428 में हुआ था, इनके पिता अरिस्टोन और माता पेरिक्तियोन थे। प्लेटो महान दार्शनिक सुकरात के अनुयायी थे।

अधिक जानकारी के लिए देखें 'प्लेटो' और 'अरस्तु'।

1.7 अधिक जानने के लिए पढ़े

1. भगीरथ मिश्र- पाश्चात्य काव्यशास्त्र- इतिहास सिद्धांत और वाद, विश्वविद्यालय प्रशासन वाराणसी, संस्करण 2005।
2. देवेन्द्रनाथ शर्मा- पाश्चात्य काव्यशास्त्र, मयूर बुक्स पब्लिकेशन।
3. अनिल राय- पाश्चात्य काव्यशास्त्र- कुछ सिद्धांत कुछ वाद, शिवालिक प्रकाशन।

1.8 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रश्नों के उत्तर लिखिए :

1. प्लेटो किसके शिष्य थे ?
2. पेरिइप्सुस किसकी रचना है ?
3. इलियड और ओडेसी के रचनाकार कौन है ?

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए :

1. पाश्चात्य कला चिंतन का प्रारंभ यूरोप के किस प्रांत से माना जाता है ?
2. प्लेटो के काव्य संबंधी विचारों को स्पष्ट करें।
3. अरस्तु द्वारा लिखित दो ग्रंथों का नाम बताइए।
4. मध्ययुगीन फ्रांसीसी दार्शनिक एवं विचारकों का नाम उल्लेख कीजिए।
5. आधुनिकयुगीन पाश्चात्य काव्यशास्त्र में किन नए विचारधाराओं का समावेश हुआ है ?
6. प्रमुख शुद्ध आधुनिक युगीन पाश्चात्य काव्य कला चिंतकों का नाम बताइए।
7. प्रमुख अस्तित्ववादी विचारकों का नाम लिखिए।
8. पाश्चात्य काव्यशास्त्र के उद्भव और विकास का एक लेखा जोखा प्रस्तुत कीजिए।

*** ***** ***

इकाई 2 : मध्ययुगीन कला और साहित्य चिंतन

इकाई की रूपरेखा

2.1 उद्देश्य

2.2 प्रस्तावना

2.3 मध्ययुगीन पाश्चात्य कला और साहित्य चिंतन

- 2.3.1 दांते
- 2.3.2 रूसो
- 2.3.3 टांलस्टाय
- 2.3.4 हेनरी

2.4 सारांश

2.5 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

2.6 अधिक जानने हेतु पढ़े

2.7 अभ्यास प्रश्न

2.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर हम सीखेंगे –

- मध्यकालीन पाश्चात्य कला और साहित्य चिंतन में कैसी मान्यताओं को प्रधानता दी गई थी।
- दांते के काव्य चिंतन के बारे में जानकारी प्राप्त होगी।
- प्रसिद्ध दार्शनिक और विचारक रूसो की विचारधारा से परिचित होंगे।
- महान एवं प्रसिद्ध पाश्चात्य विचारक टांलस्टाय की मान्यताओं से अवगत होंगे।
- हेनरी द्वारा प्रतिपादित काव्य संबंधी मान्यताओं से परिचय प्राप्त करेंगे।

2.2 प्रस्तावना

इस प्रश्न पत्र के प्रथम इकाई में हमने यह जाना कि पाश्चात्य कला साहित्य चिंतन का विकास किस प्रकार हुआ। साथ ही हमने यह भी जाना था कि पाश्चात्य काव्य शास्त्र की विकास की परंपरा को तीन भागों में बांटा गया था; जो क्रमश: प्राचीन, मध्ययुगीन और आधुनिक कालीन है। इनमें से इस इकाई में मध्ययुगीन पाश्चात्य काव्य कला चिंतन के बारे में चर्चा की जाएगी। प्रस्तुत इकाई में पाश्चात्य के भिन्न देशों में से प्रमुख चार प्रसिद्ध एवं महत्वपूर्ण विचारकों के बारे में विस्तृत रूप से चर्चा की जाएगी। वह हैं क्रमश: दांते, रूसो, टॉलस्टॉय और हेनरी। दांते ने अपनी साहित्य के लिए शुद्ध लैटिन भाषा का प्रयोग ना करते हुए तत्कालीन समाज

में प्रचलित इतालवी भाषा का प्रयोग किया था, जिससे उनके विचार काफी लोकप्रिय रहे। पाश्चात्य साहित्य में रूसो का विचार भी अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। रूसो स्वच्छंदतावादी आंदोलन के जनक भी माने जाते हैं। टांलस्टाय के विचार केवल पश्चिम में ही नहीं बल्कि समग्र विश्व में प्रभावकारी था। भारत के महात्मा गांधी जी भी उनके विचारों से काफी प्रभावित हुए थे। फ्रांसीसी विचारक हेनरी ने प्रहसन के माध्यम से समाज को संदेश देने का प्रयास किया था। आइए इन चारों विचारकों के मतों एवं सिद्धांतों की विस्तृत जानकारी प्राप्त करें।

2.3 मध्ययुगीन पाश्चात्य कला साहित्य चिंतन

मध्य युग का समय प्रथम शती से लेकर 18वीं शती के अंत तक माना जा सकता है। इस समय के कला साहित्य चिंतन में भरपूर मात्रा में विकास हुआ था। इटली, फ्रांस, स्पेन, जर्मन, रूस, अमेरिका, इंग्लैंड आदि सभी पश्चिमी देशों में इस समय अनेक विचारक और दार्शनिक हुए। आप सब ने काव्य- कला संबंधी अपनी मान्यताओं को ग्रंथों एवं व्याख्यानों के माध्यम से तिपादित किया।

2.3.1 दांते

दांते अपनी समय के अत्यंत प्रसिद्ध और प्रभावशाली विचारक रहे हैं। दांते का पूरा नाम है- दांते अलीगियरी, आपका जन्म सन 1265 ई. में इटली में हुआ था। उनके जन्म का समय मध्ययुगीन विचारधारा और संस्कृति का पुनरुत्थान का समय रहा है। उस समय समाज और काव्य के साथ-साथ राजनीति की मान्यताएँ भी परिवर्तित हो रही थी। आप इटली के महान कवियों में से एक है, केवल यही नहीं दांते को इटली का राष्ट्रकवि भी माना जाता है। उनके द्वारा रचित सुप्रसिद्ध महाकाव्य डीवाइन कमेडिया (Divine Comedia) एक विश्व प्रसिद्ध रचना है। दांते के संदर्भ में अंग्रेजी कवि शैली की लिखी हुई बात अत्यंत प्रासंगिक है। यथा- 'दांते का काव्य उस सेतु के समान है जो कल की धारा पर बना है और प्राचीन विश्व को आधुनिक विश्व से मिलाता है।' दांते की प्रसिद्धि के पीछे और कई सारे कारण छिपे हुए हैं, उनमें से प्रमुख कारण यह था कि अपने तत्कालीन बोलचाल की भाषा इतालवी को अपने महाकाव्य के लिए चुना ना कि लैटिन को। अपनी इस कार्य के माध्यम से उन्होंने जनमानस के हृदय को छू लिया था। आपने इस कार्य से लोक भाषा इतालवी को गरिमामय बना दिया था। इस दृष्टि से दांते की तुलना भारतीय महाकवि तुलसीदास के साथ की जा सकती है। दरअसल यह वह दौर था जब विश्व भर में लोक भाषा की प्रतिष्ठा का आंदोलन चल रहा था। तुलसीदास, दांते आदि इस आंदोलन के अगुआ थे। दांते केवल एक विचारक और कवि ही नहीं थे बल्कि वह एक राजनीतिक नेता और प्रशासक भी थे, उन्होंने प्लोरेंस राज्य का शासन

भार संभाला था। कला और काव्य के संबंध में उनके विचार थे दे वल्गरी एलोकुओ में प्राप्त होते हैं। आपने उत्कृष्ट कविता के लिए काव्य की भाषा पर ध्यान देने की बात कही है। एक काव्य तभी उत्कृष्ट और उपयोगी होता है, जब वहाँ पर उत्कृष्ट विषय जैसे युद्ध, प्रेम, शील, चरित्र की उदात्तता, सौंदर्य आदि का समावेश होता हैं। दांते का मानना था कि प्रेम जैसे विषयों की रचना लोक भाषा में होनी चाहिए, उन्होंने स्वयं इस क्षेत्र में पहल भी की थी। आपके अनुसार कृत्रिम और अलंकारिक भाषा के स्थान पर सहज और स्वाभाविक जैन भाषा के माध्यम से कभी अपनी बातों को अधिक प्रभावशाली ढंग से पाठकों के हृदय तक पहुंचाई जा सकती है। अनुवाद के संबंध में दांते का विचार यह था कि काव्य का अनुवाद सही और प्रभावशाली नहीं बन सकता है। क्योंकि एक काव्य निर्दिष्ट भाषा के लय और सिद्धांतों के अनुसार रचा जाता है। जिसे दूसरी भाषा में हूबहू ढाल पाना लगभग असंभव होता है। अगर ऐसा किया भी जाता है तो काव्य की सुमधुरता कम हो जाती है। साथ ही उनका मानना यह था कि लोक भाषा को ग्रहण करने का तात्पर्य कतई यह नहीं होना चाहिए कि आप अश्लील भाषा का प्रयोग करें। भाषा के संदर्भ में दांते का मानना यह था कि अश्लील भाषा और उत्तम शब्दों के प्रयोग से ही काव्य को उत्कृष्ट बनाया जा सकता है।

अत: यह कहा जा सकता है कि मध्ययुगीन कला साहित्य चिंतन में इटैलियन विचारक दांते का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। जिन्होंने कला और साहित्य के कई क्षेत्रों में नवीन विचारों एवं सिद्धांतों को प्रतिस्थापित किया था।



महत्वपूर्ण बिंदु

- दांते को इटली का महाकवि माना जाता है।
- उनका सुप्रसिद्ध महाकाव्य डिवाइन कमेडिया (Divine Comedia) एक विश्व प्रसिद्ध रचना है।

2.3.2 रूसो

रूसो का जन्म स्विट्जरलैंड के जिनेवा नगर में सन 1712 ई. में हुआ था। बचपन में ही इनकी माता का देहांत हो गया था और पिता के बाहर रहने के कारण इनका पालन पोषण संबंधियों द्वारा ही हुआ। रूसो घुमक्कड़ प्रकृति के व्यक्ति थे, इसलिए उनके विचारों में अनुभवों का सैलाब था। ये जब सन 1841 में फ्रांस आए तो वहाँ के बनावटी और कृत्रिम जीवन को देखकर बड़ा क्षोभ हुआ। उन्होंने देखा था कि वहाँ धनी वर्ग के लिए सुविधाएँ थी और आम जनता की उपेक्षा हो रही थी। अपनी पुस्तक ले कॉन्ट्रैक्ट सोशल (social Contract) में इस सूत्र पर प्रकाश डाला गया था कि बिना लोक स्वीकृति के उन पर कोई भी कानून लागू नहीं किया जा सकता है। यही

सूत्र आगे जाकर फ्रांस की क्रांति में प्रेरणा प्रदान करती है। फ्रांस की क्रांति के मूल में तीन चीज थी स्वतंत्रता, समानता और भाईचारा। रूसो के विचारों में लोगों ने एक नया और एक बेहतर दृष्टि पाई, जिसने उनके विचारों को बदल कर रख दिया। साहित्यिक क्षेत्र में भी रूसो का बड़ा ही आदर के साथ नाम लिया जाता है। पाश्चात्य में वे स्वतंत्रता वाद के जनक के रूप में भी जाने जाते हैं। आपका मानना था कि प्रकृति हमारा अविच्छिन्न अंग है, अत: प्रकृति के सौंदर्य को साहित्य में स्थान मिलना चाहिए। अपने ग्रंथों और वक्तव्य में प्राय: उन्होंने अपनी निजी भावनाओं को तीव्र रूप में व्यक्त किया हैं। अपने स्वतंत्र धार्मिक विचारों के कारण उन्हें कई चुनौतियों का सामना भी करना पड़ा था। रूसो की और एक उत्कृष्ट रचना का नाम है कन्फ्रेशंस (आत्मनिवेदन)। सन 1762 में वे फ्रांस छोड़कर चले गए फिर वापस आने पर सन् 1778 की 2 जुलाई को उनका देहांत हो जाता है। रूसो के विचारों ने तत्कालीन समाज को राजनीतिक, शैक्षिक, आर्थिक और साहित्यिक सभी दिशाओं से प्रभावित किया था और फ्रांस के राज्य क्रांति में इसकी एक बहुत बड़ी भूमिका रही है। केवल यही नहीं समग्र विश्व में रूसो के विचारों और सिद्धांतों का प्रभाव पड़ा था और आलोचक आज भी उनके विचारों की समीक्षा करते हैं।

2.3.3 टॉलस्टॉय

टांलस्टाय का पूरा नाम है काउंट लियो टॉलस्टॉय, आपका जन्म सन 1828 के 9 सितंबर को यासनाया पोलयाना में हुआ था। इनकी प्रारंभिक शिक्षा घर में ही हुई बाद में 'कजान विश्वविद्यालय' से इन्होंने शिक्षा प्राप्त की। इनका जन्म उच्च वर्ग में होने के कारण बचपन से ही इन्हें कई सारी शिक्षाएं प्रदान की गई थी। जिनमें से घुड़सवारी, ऊंचाई से कूदना आदि प्रमुख था। सन 1852 में टांलस्टाय रूसी सेवा में भर्ती होते हैं और इसी दौरान अवकाश के समय उन्होंने लिखना शुरू किया। शैशव (चाइल्डहुड) उनकी प्रथम कहानी संग्रह थी। आगे चलकर सन 1864 में इन्होंने अपना सबसे बड़ा और प्रसिद्ध उपन्यास युद्ध और शांति लिखा। जहाँ पर नेपोलियन के रूस पर किए गए आक्रमण तथा युद्ध के भयंकर दुष्प्रभावों का मार्मिक चित्रण मिलता है। उनके अनुसार कला हमारे पूर्व अनुभवों का प्रतिफलन है। वह एक विशिष्ट शैली में प्रतिफलित होती है ताकि सहृदय भी उसे कवि के समान ही अनुभव कर सके। टांलस्टाय ने साहित्य का यथार्थ जीवन के साथ गहरा संबंध माना है। आप कला के लिए प्रस्तुत सिद्धांत के विरोधी थे। आपका मानना यह था कि कला और साहित्य युग विशेष की सृष्टि होती है। एक युग का इतिहास और अनुभव वहाँ पर प्रतिफलित होता है।

एक उपन्यास और लेखक के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त करने के बाद टांलस्टाय खुश नहीं थे, उन्होंने अपनी जीवन शैली में परिवर्तन करना उचित समझा और अंत में

उन्होंने अहिंसा का मार्ग अपनाया। पशुओं के प्रति भी हिंसा बंद कर दी और एक सामान्य किसान के भांति सहज साधारण जीवन व्यतीत करने लगे। अपनी सभी संपत्तियों को उन्होंने अपने परिवार जनों में बांट दिया था और किसानों के बीच रहने लगे थे। इस घटना के बाद सन 1910 के 7 नवंबर को लियो टांलस्टाय का देहांत हो जाता है। अपना घर छोड़कर किसानों के बीच चले जाने वाले इस महान दार्शनिक और साहित्यकार की जीवन शैली ने महात्मा गांधी जी को भी बड़ा प्रभावित किया था। संभवत- उन्हीं की राह पर चलकर महात्मा गांधी ने भी सहज साधारण जीवन यापन करना शुरू किया था और अहिंसा के मार्ग को अपनाया था।



महत्वपूर्ण बिंदु

- टांलस्टाय का सबसे प्रसिद्ध रचना 'युद्ध और शांति' (War and Peace) है।
- टांलस्टाय 'कला कला के लिए' सिद्धांत के विरोधी थे।

2.3.4 हेनरी

हेनरी का पूरा नाम हेनरी बर्गसन है। इनका समय सन् 1859 से 1941 तक माना जाता है। 19वीं शती के बाद के फ्रेंच विचारकों में हेनरी का नाम बड़े ही आदर के साथ लिया जाता है। उनका विचार है कि बुद्धि का काम बाह्यविविधताओं को सुलझाना है। बुद्धि द्वारा हम इस ज्ञान को ग्रहण कर सकते हैं। परंतु आंतरिक ज्ञान के लिए बुद्धि कभी-कभी अक्षम हो जाती है और वहाँ कला और काव्य काम आती हैं। आपने प्रहसन के माध्यम से समाज के लोगों को व्यवहारिक और नैतिक संदेश देने का प्रयास किया हैं। बड़े ही रोचक प्रकृति के विचारक होने के नाते आपने हंसी मजाक के जरिए महत्वपूर्ण संदेश समाज को दिए हैं। हेनरी की मान्यता यह है कि प्रहसन में प्रदर्शित एक व्यक्ति पर हम तब हंसते हैं, जब हम मानव सुलभ प्रतिक्रियाओं को व्यक्त करने में असफल होते हैं। प्रहसन उपभोग करते समय हम संवेदनहीन हो जाते हैं। प्रहसन में अभिनय करने वाले विकलांग को देखकर हमें हंसी आती हैं, परंतु वास्तविक जीवन में जब ऐसी स्थिति आती है, तब हम संवेदनशील हो जाते हैं। इस प्रकार प्रहसन व्यक्ति को सुधारता है और समाज में मान्य व्यवहार के विपरीत आचरण करने पर उसे दंड प्रदान करता है। हेनरी का यह दृष्टिकोण परंपरावादी और नैतिक मूल्यों से परिपूर्ण है।

इस प्रकार हेनरी का मानना है की प्रहसन सामाजिक लोक व्यवहार को दर्शाता है और वह सामाजिक बंधन से बंधा हुआ है। जबकि कला समाज को एक नई दृष्टि प्रदान कर सकती है। मध्यकालीन फ्रांसीसी विचारकों में हेनरी का नाम ऊंचा है, उनके

विचारों में प्राचीनता और नवीनता के बीच वाद विवाद भी रहा है और सामंजस्य भी रहे हैं।



अपनी प्रगति जांचें

प्रश्न 1. हेनरी बर्गसन की साहित्य संबंधी विचारों पर प्रकाश डालिए।



2.4 सारांश

पाश्चात्य काव्यशास्त्र के विकास परंपरा में मध्यकालीन विचारकों की एक बड़ी भूमिका रही हैं। यह वह समय था जो प्राचीन मान्यताओं को नवीन मान्यताओं के साथ जोड़ रहा था। कई विचारक ऐसे हुए जिन्होंने प्राचीन मान्यताओं का खंडन किया था और नवीन मान्यताओं को ग्रहण किया था। इनमें से कुछ विचारक ऐसे भी हुए जिन्होंने प्राचीन और नवीन मान्यताओं को एक जुट किया और समाज के हित में आने वाली मान्यताओं पर ज्यादा विचार किया। दांते, रूसो, टॉलस्टॉय और हेनरी के विचारों से हमने यह पाया कि साहित्य युग सापेक्ष होना चाहिए। आप सभी विचारकों ने प्रकृति को कला और साहित्य का अभिन्न अंग माना हैं। रूसो की स्वच्छंद विचारधारा और टॉलस्टॉय के अहिंसा मार्ग ने समग्र विश्व को प्रभावित किया हैं।



2.5 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न 1 का उत्तर : हेनरी बर्गसन का विचार है कि बुद्धि का काम बाह्य विविधताओं को सुलझाना है। बुद्धि द्वारा हम इस ज्ञान को ग्रहण कर सकते हैं। परंतु आंतरिक ज्ञान के लिए बुद्धि कभी-कभी अक्षम हो जाती है और वहाँ कला और काव्य काम आती हैं। आपने प्रहसन के माध्यम से समाज के लोगों को व्यवहारिक और नैतिक संदेश देने का प्रयास किया हैं। अधिक जानने के लिए पढ़ें 'हेनरी'।



2.6 अधिक जानने के लिए पढ़े

1. https://hi.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%B0%E0%A5%82%E0%A4%B8%E0%A5%8B"2. https://bh.wikipedia.org/wiki/

% E 0 % A 4 % B 2 % E 0 % A 4 % B F % E 0 % A 4 % A F % E 0 % A 5 % 8 B _ % E 0 % A 4 % 9 F % E 0 % A 4 % B E % E 0 % A 4 % B 2 % E 0 % A 4 % B 8 % E 0 % A 5 %8D%E0%A4%9F%E0%A4%BE%E0%A4%AF

3. भगीरथ मिश्र–पाश्चात्य काव्यशास्त्र – इतिहास और सिद्धांत, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, संस्करण 2005।



2.7 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रश्नों के उत्तर लिखिए :

1. 'डीवाइन कमेडिया' किसकी रचना है?
2. 'युद्ध और शांति' किस विधा की रचना है?

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए :

1. मध्ययुगीन कला साहित्य चिंतन में पश्चिम के किन–किन देशों के विचारक शामिल थे?
2. दांते के कला साहित्य चिंतन पर प्रकाश डालिए।
3. दांते के संदर्भ में अंग्रेजी कवि शेली ने क्या कहा था?
4. Social Contract किसकी प्रसिद्ध रचना है?
5. टॉलस्टॉय द्वारा लिखित विश्व प्रसिद्ध ग्रंथ का नाम लिखिए।
6. रूसो के विचारों को संक्षेप में लिखिए।
7. हेनरी ने प्रहसन के माध्यम से समाज को क्या संदेश दिया था?

*** ***** ***

इकाई 3 : आधुनिकयुगीन कला और साहित्य चिंतन

इकाई की रूपरेखा

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 लेनिन

3.4 फ्रायड

3.5 मैक्सिम गोर्की

3.6 टी. एस. इलियट

3.7 सारांश

3.8 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

3.9 अधिक जानने के लिए पढ़े

3.10 अभ्यास प्रश्न

3.1 उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के उपरांत आप–

- लेनिन के कला–साहित्य और चिंतन को जान सकेंगे।
- फ्रायड के मनोविश्लेषण के बारे में जान पाऐंगे।
- लेनिन और फ्रायड के साहित्य उद्देश्य के बारे में अवगत होंगे।
- मैक्सिम गोर्की और टी. एस. इलियट की साहित्य संबंधी विचारों से परिचय प्राप्त करेंगे।

3. 2 प्रस्तावना

कला, साहित्य और समाज पर साहित्य चिंतकों का प्रभाव खुब पड़ा है। साहित्य एवं कलाएं समाज के आर्थिक–भौतिक जीवन से उत्पन्न होती है और उसी स्थित और आधारित रहती है। साहित्य एवं कला केवल परिस्थितियों से प्रभावित ही नहीं होती, वरन् कभी–कभी और प्राय: उन्हें प्रभावित भी करती है। सामाजिक क्रान्ति एवं समाज के पुनर्निर्माण में भी कला एवं साहित्य का महत्वपूर्ण योगदान है। कला के उद्भव और विकास में श्रम की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है, क्योंकि उसके ही द्वारा उन हाथो में शक्ति और क्षमता आती है जो कला का निर्माण करते हैं, साथ ही उससे जीवन का अनुभव प्राप्त होता है जो साहित्य का सृजन करने में सहायक होता है। कला–साहित्य पर नये–नये सिद्धांतों का बड़ी गहराई से प्रभाव पड़ा है। साहित्य का संबंध मानव–मन से है। साहित्यकार जो विभिन्न चरित्रों का चित्रण करता है, वह साहित्य के माध्यम से

निखरता है। साहित्य चिंतकों में लेनिन, फ्रायड, मैक्सिम गोर्की और टी. एस. इलियट का महत्वपूर्ण भूमिका है।

3.3 लेनिन

लेनिन मार्क्सवादी विचारधारा को व्यावहारिक रूप देने वाले अन्यतम चिंतक थे। लेनिन का विचार था कि वह कला, कला नहीं है जिसको कुछ लोग ही समझ सकें। कला वास्तव में जनता की थाली है और उसकी जड़ें श्रमशील जनता के बीच गहरी होनी चाहिए। वहीं कला या साहित्य है जिसे जनसाधारण समझे और प्यार करें। कर्मशीलता को जगाने वाली कला ही वास्तविक कला है। लेनिन कला को समाजवादी आदर्शों के अनुसार रचना करने की सलाह देते थे। उनका विचार था कि साहित्य और कला जनता की सम्पति हैं। अत: उसे जन-कल्याणकारी होना ही चाहिए।

3.4 फ्रायड

सिगमण्ड फ्रायड 1856-1937 ई.। फ्रायड का जन्म सन् 1856 ई. में आस्ट्रिया के यहूदी परिवार में हुआ था। ये चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में कार्यरत थे। फ्रायड की मनोवैज्ञानिक पद्धति को हम तीन विषयों में बाँटा जा सकते हैं: अचेतन मन, लिबिडो या काम-वृत्ति और ग्रन्थियाँ या वर्जनाएं।

अचेतन मन : फ्रायड के अनुसार मनुष्य का मन एक समुद्र में तैरते हुए बर्फ के शिलाखण्ड के समान है। जो भाग उसका दिखाई देता है, वह पूरे हिमखण्ड का छोटा सा अंश होता है। बहुत बड़ा-भाग दिखाई नहीं देता। यही स्थिति मानव-मन की भी होती है। उसके तीन भाग होते हैं - चेतन, अवचेतन या अर्द्धचेतन तथा अचेतन मन।

लिबिडो या काम-वृत्ति : फ्रायड, मनुष्य के सभी क्रिया-कलापों के मूल में काम-वृत्ति को मानते हैं। मनुष्य की कुण्ठित और दमित असामाजिक इच्छाएं और प्रवृत्तियाँ उदात्त और परिष्कृत होकर कलाओं और संस्कृतियों का निर्माण करती है।

ग्रन्थियाँ या वर्जनाएँ : फ्रायड का मत है कि इच्छाओं और वासनाओं के दमन से ग्रन्थियाँ या कुण्ठाएं निर्मित हो जाती है। उनके वासनाओं उदात्तीकरण से ग्रन्थियाँ खुलती और कुण्ठाएं दूर हो जाती है और इस उदात्तीकरण परिष्कृत क्रिया-कलाप से सभ्यता का विकास एवं सांस्कृतिय मूल्यों का निर्माण होता है।



अपनी प्रगति जांचें

प्रश्न 1. मार्क्सवादी चिंतक के रूप में लेनिन का मूल्यांकन कीजिए।

3.5 मैक्सिम गोर्की

मैक्सिम गोर्की का जन्म सन् 1868 में निझनी नावोगोरद (रूस) में हुआ था। रूसी साहित्य के विकास में मैक्सिम गोर्की का योगदान महत्वपूर्ण है। गोर्की का स्थान विश्व इतिहास में भी महत्वपूर्ण है। इसका कारण केवल उनकी साहित्यिक रचनाएँ ही नहीं, बल्कि उनकी राजनीतिक समझ, साम्यवाद के प्रति उनका अटूट विश्वास और रूसी क्रांति में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका आदि प्रमुख कारण है।

मैक्सिम गोर्की की कविताओं का विषय जिन्दगी और मानवता है। मैक्सिम गोर्की समाज में क्रान्तिकारी परिवर्तन चाहते थे, जो हमें 'सांग ऑफ़ द फाल्कन' और 'सांग अफ द स्ट्रोमी पेट्रल' में देखने को मिलता है। जिंदगी के नियमों को चुनौती देनेवाले, स्वतंत्रता की अभिलाषा रखनेवाले आदि सभी उनकी कविताओं के पात्र है।

गोर्की की प्रारंभिक कथा-साहित्य मानवता और सौंदर्य से भरा हुआ है। गरीब जनता के प्रति उनके मन में आस्था और सहानुभूति थी। उनका प्रसिद्ध उपन्यास 'माँ' असफल रूसी क्रांति के बाद लिखा गया है। अपना भविष्य कैसा होना चाहिए, इसका निर्णय खुद लेना चाहिए। संगठित मजदूर वर्ग की कलात्मक अभिव्यक्ति इस उपन्यास में हुई है। क्रांति की ओर बढ़ते मजदूर वर्ग की कहानी है 'माँ'।

मैक्सिम गोर्की द्वारा रचित नाटक 'द लोअर डेप्थ्स', 'द स्मग सिटीजन', 'एनमीज', 'बारबेरियन्स' आदि महत्वपूर्ण है।

3.6 टी. एस. इलियट

टी. एस. इलियट का जन्म 26 सितंबर, 1888 को सेंटलुई (अमेरिका) में हुआ था। टी. एस. इलियट कवि और आलोचक थे। उनकी कविता और आलोचना में एकरूपता दिखाई देती है। यही कारण है कि उन्होंने अपनी आलोचनात्मक पुस्तक में जिन काव्यगत सिद्धांतों के बारे में उल्लेख किया है, उसे वह अपनी कविता के जरिए व्यवहारिक रूप भी प्रदान किया है।

टी. एस. इलियट का पूरा नाम 'टॉमस स्टलर्स इलियट' है। इलियट बिम्बवादी आंदोलन के समर्थक थे। उनकी रचनाओं में प्रमुख हैं- 'दि सेक्रेड वुड' (1920), 'द वेस्ट लैंड' (1922), 'होमेज टु जॉन ड्राइडन' (1924), 'एलिजाबेथेन एसेज' (1934), 'दि यूज ऑफ पोयट्री एण्ड दि यूज ऑफ क्रिटिसिज्म' (1933), 'सेलेक्टेड एसेज' (1932), 'पोयट्री एण्ड ड्रामा' (1941) आदि।

टी. एस. इलियट का सिद्धांत है- 'निर्वैयक्तिकता का सिद्धांत'। निर्वैयक्तिकता का सिद्धांत- कवि के व्यक्तिगत भावों की विशिष्टता का सामान्यीकरण अर्थात् कवि अपने निजी भाव कविता में अभिव्यक्त करता है और वह भाव इस प्रकार से प्रस्तुत करता है कि वे भाव उसके अपने ही नहीं, जनसाधारण के भाव बन जाते हैं।

टी. एस. इलियट और उनकी साहित्य संबंधी विचारों पर आगे विस्तार से चर्चा करेंगे।



3.7 सारांश

- लेनिन मार्क्सवादी विचारधारा को व्यवहारिक रूप देने वाले अन्तिम चिंतन थे। वे मार्क्सवादी दृष्टिकोण से कला और साहित्य पर विचार करते हैं। मार्क्स के अलगाववाद ऐतिहासिक, भौतिकवाद अतिरिक्त मूल्य, वर्ग संघर्ष तथा क्रान्ति के सिद्धान्तों का विश्लेषण किया है।
- फ्रायड ने प्रगति की परम्परा को आगे बढ़ाते हुए साहित्यकार के व्यक्तित्व और साहित्य की प्रवृत्तियों के विश्लेषण व्याख्यान के लिए नवीन मार्ग का प्रवर्तन किया, जिससे साहित्य के अध्ययन-आलोचना के इतिहास में नया अध्याय जुड़ा। इसी प्रकार मैक्सिम गोर्की और टी. एस. इलियट की कला और साहित्य संबंधी विचारों से भी पाश्चात्य आधुनिक कला और साहित्य काफी प्रभावित रहा।



3.8 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न 1 का उत्तर : लेनिन का विचार था कि वह कला, कला नहीं है जिसको कुछ लोग ही समझ सकें। कला वास्तव में जनता की थाली है और उसकी जड़ें श्रमशील जनता के बीच गहरी होनी चाहिए।

अधिक जानने के लिए देखें 'लेनिन'।



3.9 अधिक जानने के लिए पढ़े

1. डॉ. भगीरथ मिश्र- पाश्चात्य काव्यशास्त्र-इतिहास सिद्धांत और वाद, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण 2005।
2. देवेन्द्रनाथ शर्मा- पाश्चात्य काव्यशास्त्र, मयूर बुक्स पब्लिकेशन।
3. अनिल राय- पाश्चात्य काव्यशास्त्र- कुछ सिद्धांत कुछ वाद, शिवालिक प्रकाशन।



3.10 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रश्नों के उत्तर लिखिए :

1. फ्रायड का जन्म कब और कहाँ हुआ था?

2. 'सांग ऑफ द फाल्कन' किसकी रचना है?
3. 'सिलेक्टेड एसेज' के रचनाकार कौन है?

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए :

1. लेनिन के साहित्य चिंतन पर प्रकाश डालिए।
2. फ्रायड के कला साहित्य चिंतन पर प्रकाश डालिए।
3. फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद पर प्रकाश डालिए।
4. मैक्सिम गोर्की की कला साहित्य संबंधी विचारों पर अपना विचार प्रकट कीजिए।

*** ***** ***

इकाई 4 : अनुकरण सिद्धांत

इकाई की रूपरेखा

4.1 उद्देश्य
4.2 प्रस्तावना
4.3 प्लेटो का सामान्य परिचय
4.4 काव्यदृष्टि
4.5 अनुकरण सिद्धांत
4.6 सारांश
4.7 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)
4.8 अधिक जानने के लिए पढ़े
4.9 अभ्यास प्रश्न

4.1 उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के उपरांत आप–

- प्लेटो का साहित्यिक जीवन परिचय जान सकेंगे।
- प्लेटो के काव्य चिंतन पर अपनी समझ विकसित कर पाएंगे।
- प्लेटो की काव्य संबंधी अवधारणा के बारे में अवगत होंगे।
- प्लेटो के अनुकरण संबंधी विचारधारा से परिचय प्राप्त करेंगे।

4.2 प्रस्तावना

पाश्चात्य आलोचना के जनक प्लेटो मूलत: आलोचक नहीं, अपितु दार्शनिक थे। उनका उद्देश्य आलोचनात्मक सिद्धांतों का निरूपण नहीं, अपितु अपने गुरु की दार्शनिक मान्यताओं का उपस्थापन करना था। प्लेटो ग्रीक के एक ऐसे महान दार्शनिक हुए हैं, जिनके विचारों की झलक उनके बाद आए लगभग सभी दार्शनिकों के विचारों में देखने को मिलता है। प्लेटो महान दार्शनिक सुकरात के शिष्य थे। जब सुकरात को मृत्युदंड दिया गया तो प्लेटो का प्रजातंत्र शासन प्रणाली से विश्वास उठ गया। प्लेटो ने अनेक महत्वपूर्ण पुस्तकों की रचना की, जिनमें 'एपोलॉजी', 'क्राइटो', 'प्रोटेगोरस', 'रिपब्लिक' इत्यादि शामिल हैं। प्लेटो के संबंध में यह महत्वपूर्ण बात है कि उनको 'पूर्ण ग्रीक' की उपाधि दी गई, क्योंकि उनके कार्यकाल में ग्रीक दर्शन अपने चरम पर पहुंचा। प्लेटो की समस्त मान्यताएँ उनके प्रसिद्ध ग्रन्थ 'रिपब्लिक' (Republic) में देखी जा सकती हैं। दार्शनिक होने के कारण वे सत्य के समर्थक थे। कवि और काव्य के प्रशंसक होते हुए भी, जो काव्य सत्य की कसौटी पर खरा नहीं उतरता, उसे वह हेय और निन्दनीय समझते थे।

होमर के प्रति उनकी बहुत श्रद्धा थी, किन्तु उनकी दृष्टि में होमर का काव्य सत्य से दूर काल्पनिक था। इसलिए उन्होंने यह कहकर भी निन्दा की कि सत्य के मूल पर किसी का सम्मान करना अनुचित है- 'It would be wrong to honour a man at the expense of truth.'- 'Republic.' प्लेटो संस्कार और स्वभाव से कवि तथा शिक्षा और परिस्थिति से दार्शनिक थे। काव्य और दर्शन के सापेक्ष महत्व का उनमें अन्तर्द्वन्द्व परिलक्षित होता है। जीवन के परवर्ती काल में उन पर दर्शन का प्रभाव बढ़ता गया और काव्य का आकर्षण होता गया। इसी से उन्होंने स्पष्ट कहा कि समाज पर काव्य का प्रभाव घातक होता है।



महत्वपूर्ण बिंदु

- प्लेटो को 'पूर्ण ग्रीक' की उपाधि दी गई है।
- प्लेटो की समस्त मान्यताएँ उनके प्रसिद्ध ग्रन्थ 'रिपब्लिक' (Republic) में देखी जा सकती हैं।

4.3 प्लेटो का सामान्य परिचय

प्लेटो मूलत: दार्शनिक और शिक्षाशास्त्री थे। इनके पिता का नाम 'अरिस्टोन' तथा माता का नाम 'पेरिक्टियोन' था। इनके माता-पिता ने इनका नाम 'अरिस्तोक्लीस' रखा, इनके गुरू ने इसका नाम प्लातून रखा, जो अरबी-फारसी में 'अफलातून' नाम से चर्चित हुआ। प्लेटो का जन्म एथेंस (यूरोप) के समीपवर्ती ईजिना द्वीप में हुआ था। उनका परिवार सामंत का वर्ग था। उनके पिता और माता इतिहास प्रसिद्ध कुलीन नागरिक थे। कुछ विद्वानों के अनुसार उनका जन्म एथेंस के एक समृद्ध और राजनैतिक परिवार में हुआ था। प्लेटो के जन्म स्थल और जन्म तारीख से संबंधित प्रामाणिक जानकारी अभी तक प्राप्त नहीं हुई है। प्राचीन सूत्रों के अनुसार विद्वानों का मानना है कि उनका जन्म एथेंस में (427 ई. पू. - 347 ई. पू.) हुआ। प्लेटो के प्रारम्भिक जीवन और शिक्षा के बारे में भी बहुत कम जानकारी उपलब्ध है। प्लेटो बचपन से ही काफी कुशाग्र थे और बचपन से ही उनमें दार्शनिकों के गुण थे। उनके परिवार ने उन्हें वे सारी सुविधाएँ प्रदान की जो उनकी सही दिशा में परवरिश के लिए चाहिए थी। अपने समय के कुछ महान शिक्षकों ने प्लेटो को ग्रामर, संगीत, जिमनास्टिक और दार्शनशास्त्र की शिक्षा दे थी। प्लेटो मूलत- दार्शनिक थे। इसके साथ ही वे यूनान के प्रसिद्ध गणितज्ञ भी थे। वे सुकरात के शिष्य एवं अरस्तु के गुरू थे। पश्चिम ज्ञान-जगत की दार्शनिक पृष्टभूमि को तैयार करने में इन तीन दार्शनिकों की महत्वपूर्ण भूमिका थी। ऐसा कहा जाता है की सुकरात की मृत्यु के बाद प्रजातंत्र के प्रति प्लेटो को घृणा हो गई। उन्होने मेगोरा, मिस्त्र, साएरीन, इटली और सिसली आदि देशों की यात्रा की। अंत में एथेंस लौटे और पश्चिमी जगत में उच्च शिक्षा के लिए पहली संस्था 'एकेडमी' की स्थापना का श्रेय भी प्लेटो को ही जाता है। उन्हें दर्शन और गणित के साथ-साथ तर्कशास्त्र एवं नीतिशास्त्र का भी अच्छा ज्ञान था।

4.4 काव्य दृष्टि

प्लेटो के उक्त दृष्टिकोण से यही स्पष्ट होता है कि उसके अनुसार काव्य या तो मिथ्या है या कदाचार का प्रेरक है, अतएव हेय है। पर प्लेटो श्रेष्ठ कवि या श्रेष्ठ कलाकारों का विरोधी नहीं था। सत्य तो यह है कि प्लेटो काव्य का उद्देश्य केवल आनन्द प्रदान करना ही नहीं मानता और वह तो साहित्य का मूल्यांकन सत्य से ही करने का पक्षपाती था। उसने कविता का मुख्य प्रयोजन मानव चरित्र को प्रभावित करना और उसका निर्माण करना तथा आत्मा को प्रच्छन्न शक्तियों को प्रकाश में लाना ही स्वीकार किया है तथा कविता के माध्यम से मनुष्य को अपना जीवन श्रेष्ठतम बनाने और जगत के पुनर्निर्माण हेतु योग्य बनाने की ओर भी संकेत किया है। इस प्रकार प्लेटो ने काव्य कला को कठोर संयम और आत्मनियन्त्रण पर आधारित माना तथा उसकी कसौटी पर सत्य बतलाली है। अतएव प्लेटो की सर्वाधिक महत्वपूर्ण देन यह है कि उसने मनुष्य को चिंतन की दिशा में प्रेरित कर उसे आलोचना प्रणाली की ओर उन्मुख किया है। प्लेटो को पाश्चात्य काव्यशास्त्र और सौन्दर्यशास्त्र का जन्मदाता माना जाता है। वास्तव में तो वह दार्शनिक थे। साहित्य विषयक उसके विचार प्रायः आनुसंगिक ही है। उनकी दृष्टि काव्य केंद्रित नहीं थी। उनके विचार के केंद्र में परम सत्य था। 'रिपब्लिक' में प्लेटो ने स्पष्ट कहा कि भाव अथवा विचार ही आधारभूत सत्य है। प्लेटो पश्चिमी विज्ञान, दर्शनशास्त्र और गणित में पश्चिमी दुनिया में प्रसिद्ध होने के साथ ही वे पश्चिमी धर्म और साहित्य के संस्थापक भी थे। उसके समय में कवि को उपदेशक, मार्गदर्शक तथा संस्कृति का रक्षक माना जाता था। काव्य के संदर्भ में उनका मत था कि, 'कविता जगत की अनुकृति है, जगत स्वयं अनुकृति है, अतः कविता सत्य से दोगुनी दूर है। वह भावों को उद्वेलित कर व्यक्ति को कुमार्गीगामी बनाती है। अतः कविता अनुपयोगी है एवं कवि का महत्व एक मोची से भी कम है।

4.5 अनुकरण सिद्धांत

प्लेटो एक आदर्शवादी चिंतक था। प्लेटो सामान्य अथवा विश्वमान्य सत्य को ही सत्य मानता था। उसकी दृष्टि में विशिष्ट सत्य विश्वमान्य सत्य की छाया मात्र है। उसकी दृष्टि में आदर्श ही सत्य है। वस्तु जगत उस आदर्श का अनुकरण मात्र है। उसने पलंग का उदाहरण देकर अपनी बात बताई कि ईश्वर केवल एक पलंग की रचना करता है, वह पलंग आदर्श होता है, शेष जितने पलंग होते हैं, वे सब आदर्श पलंग की नकल मात्र होते हैं। सत्य उसी आदर्श पलंग में निवास करता है, शेष पलंग असत्य है। यही स्थिति कवि की है। कवि जिस वस्तु का अनुकरण करता है, उसकी प्रकृति से परिचित नहीं होता। जैसे पलंग का चित्र बनाने वाला चित्रकार मूल पलंग की प्रकृति से न तो पूर्ण परिचित होता है और न उसका स्वरूप ही सच्चाई से अंकित कर पाता है। इसी प्रकार त्रासदी लेखक न तो अपने अनुकार्य की प्रकृति से परिचित होता है और न उसका सच्चा स्वरूप ही अंकित कर पाता है। उसका अनुकरण अज्ञानजन्य होता है और उसका सत्य

भ्रामक है। प्लेटो के चिन्तन के सार-रूप को इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है-

1. ईश्वर द्वारा रचित आदर्श जगत ही सत्य है।
2. वस्तु-जगत प्रत्यय जगत की अनुकृति या छाया होने के कारण मिथ्या या असत्य है।
3. कला-जगत, वस्तु जगत की छाया या अनुकृति होने के कारण और भी मिथ्या है। क्योंकि वह अनुकृति की अनुकृति है।

प्लेटो अनुकरण को समस्त कलाओं की मौलिक विशेषता मानते हैं। प्लेटो कला में ऐंद्रिक ऐक्य को अनिवार्य शर्त के रूप में देखते थे। अर्थात कलाकार को अपनी कृति के समस्त अंगों का विन्यास एक निश्चित क्रम से पूर्ण संगति के साथ करना चाहिए। प्लेटो की मान्यता है कि 'अच्छी काव्य कृति के निर्माण के लिए कवि को अपने विषय का पूर्ण एवं स्पष्ट बोध होना चाहिए और उसकी अभिव्यक्ति में गतिशील योजना बनानी चाहिए। इसी आधार पर उन्होंने संगीतकला, चित्राकला आदि को ललित कलाओं के वर्ग में रखा और उनका उद्देश्य मनोरंजन बताया है। दूसरा वर्ग उपयोगी कला को माना है, जिसका उद्देश्य व्यावहारिक उपयोग है। उनका मानना था कि यदि काव्य का रूप, प्रेरणा, प्रभाव आदि व्यक्ति को मूल सत्य से दूर ले जाएं तो ऐसा काव्य सर्वथा त्याज्य है। प्लेटो के काव्य और कला संबंधी सिद्धांत को समझने के लिए उसका पलंग का उदाहरण हमारी काफी सहायता करता है। जब हम एक पलंग बनवाना चाहे तो एक आदर्श चित्र हमारे विचार (आइडिया) ख्याल या कल्पना में होता है। फिर एक चित्र वह बनाता है जिसे चित्रकार उकेरता है और जिसके आधार पर बढ़ई पलंग तैयार करता है। सत्य या आर्दश तो व्यक्ति के विचार या आइडिया में है। इसलिए जिस वस्तु की रचना बढ़ई ने की है, वह विचार में अवस्थित कृति से तीन सोपान दूर है। प्लेटो यह मानकर चला है कि ईश्वरीय या प्राकृतिक सत्य का चित्र नई रचनात्मक कृति नहीं है, यह तो सत्य की अनुकृति है। चित्रकार या कवि द्वारा प्रस्तुत गुलाब का चित्र प्राकृतिक पुष्प की अनुकृति है, यह वास्तव में पर-कृति या दूसरे की कृति है जो सत्य नहीं है।

प्लेटो के अनुसार आदर्श तो विचार या प्रत्यय (Idea) में स्थित है। इस प्रकार कलाकार उस आदर्श की अनुकृति प्रस्तुत करता है जो विचार में अवस्थित होता है। कलाकार सत्य का ही अनुकरण नहीं करता, यह तो अनुकरण का भी अनुकरण प्रस्तुत करता है। इसीलिए कलाकार और कवि सत्य से तीन सोपान दूर होते हैं। अंग्रेजी शब्द 'आइडिया' से बने 'आइडियल' से बात अधिक स्पष्ट हो जाती है। आइडियल या आदर्श विचार का विषय का विषय है।

ईश्वर और सत्य एक ही तत्व के दो नाम थे। इन दार्शनिक की मुख्य स्थापना यही थी कि ईश्वर या सत्य एक है, उसके अनेक रूप नहीं हो सकते। तत्कालीन काव्यों और नाटकों में ऐसी कथाओं की भरमार थी जिनमें विविध देवता परस्पर ईर्ष्या, द्वेष जैसी दुर्भावना से ग्रस्त रहते तथा मनुष्यों से भी छद्म पूर्ण व्यवहार करते थे। सत्य पर अडिग विश्वास रखने वाले इन दार्शनिको ने बहुदेववाद पर शंका उठाई तथा इस प्रकार के साहित्य की भर्त्सना की। प्लेटो ने दार्शनिक चिंतकों को प्रधानता देने वाले अपने नगर की स्पार्टा के बलशाली एवं युद्ध कुशल

नागरिकों के हाथों पराजय का अनुभव किया था, इसलिए वह यह सोचने को बाध्य हो गया कि एथेंस के समाज में मूलभूत निर्बलता का कारण क्या है। वास्तव में प्लेटो का मुख्य उद्देश्य एक आदर्श राज्य की स्थापना करना था, जिसे चित्रकार रंगो द्वारा निर्मित करता है, कवि शब्दों द्वारा। यह चित्र कलाकार या कवि द्वारा अनुभूत एक फूल की अनुभूति है जबकि सर्वश्रेष्ठ या आदर्श फूल तो कहीं विचार या आइडिया में रहा करता है। कलाकार और कवि प्रकृति की अनुकृति या नकल किया करते हैं, इसीलिए उनकी रचना को 'सत्य' नहीं माना जा सकता। वास्तविक सत्य तो ईश्वरीय है। कलाकार और कवि अपनी कल्पना द्वारा ऐसा निर्माण करते हैं जो मूल सत्य से बहुत दूर होता है। इस प्रकार प्लेटो कभी कल्पना को कवि की विशिष्ट प्रतिभा ना मानकर इसे कुवृत्ति के रूप में देखता है जो कवि को असत्य चित्रण के लिए प्रेरित करती है तथा मनुष्यों में कुकर्म को प्रोत्साहित करती है। इसी कल्पना के सहारे कवि ऐसी कृति की रचना करते हैं जो सत्य होती है, अशुभ भी। दूसरे शब्दों में वे कविता को सत्य नहीं मानते थे। वे कलाकृति को सृजनात्मक कृति न मानकर कवि को मात्र अनुकरण कर्त्ता या नकलची करार देता है। जब प्लेटो से पूछा जाता है कि होमर जैसे कवियों का दोष क्या है? तो प्लेटो अपने शिष्यों से कहता है, 'हमारा उद्देश्य एक आदर्श राज्य का निर्माण करना है। साहित्य की आलोचना या उसकी रचना से हमें कुछ लेना देना नहीं है। होमर एक महानतम कवि हो सकता है किन्तु हम उसे अपनी रिपब्लिक में कोई स्थान नहीं देंगे। क्योंकि वे झूठ कहते हैं और यही नहीं वह वास्तविक नहीं होता। वह काल्पनिक होता है, सत्य की अनुकृति होता है। 'बुरा' इसलिए कि उनके लेखन का बच्चों और युवाओं के चरित्र पर बुरा प्रभाव पड़ता है। वह साहित्य की परख के लिए उपयुक्त जांचकर्ताओं की नियुक्ति करना चाहते हैं। इनकी रचनाओं के ऐसे अंश जिनमें सत्य अर्थात ईश्वर की प्रार्थनाएं हो या फिर ऐसे अंश जो बच्चों के चरित्र पर शुभ प्रभाव डालें, वही रिपब्लिक के लिए स्वागत योग्य है। प्लेटो काव्य और कविता को अनुकरण या नकल (Imitation) मानता है। प्लेटो कवि की कल्पना शक्ति को बुराई की जड़ मानता है क्योंकि कल्पना के सहारे ही कलाकार और कवि मनगढ़ंत कलाकृतियां या कविताएं गढ़ा करते हैं। प्लेटो काव्य को अनुकृति की भी अनुकृति का दर्जा देते दिखाई देते हैं। वे अनुकरण को समस्त कलाओं की मौलिक विशेषता मानते थे। इस दृष्टि से प्लेटो की दृष्टि में समस्त कवि और कलाकार अनुकरण कर्ता मात्र है। उनके अनुसार अनुकरण वह प्रकिया है जो वस्तुओं को उनके यथार्थ रूप यानि मूल में प्रस्तुत न करके आदर्श रूप में प्रस्तुत करती है। इसलिए ही काव्य सत्य से दूर होता है। प्लेटो के अनुसार अनुकरण और कला के रिश्ते पर विचार करते हुए कहा है कि बढ़ई उस अर्थों में मेज और पलंग की सृष्टि नहीं करता जिन अर्थों में ईश्वर करता है। कलाकार तो ईश्वर की सृष्टि की अनुकृति मात्र करता है। उनका मानना था कि सृष्टि की आकृति का मूल निर्माता तो ईश्वर ही है। कलाकार तो मात्र इस सृष्टि से अनुकरण करके अपना अनुकार्य करता है। इस प्रकार भौतिक जगत द्वारा किया गया सृजन परम सत्य नहीं हो सकता। ईश्वर की चेतना में पहले से उपस्थित प्रत्यय या विचार रूप में निर्मित आकृतियों का अनुकरण ही है। इस दृष्टि से वे काव्य को मूल न मान कर अनुकार्य

मानते थे। जो मूल सृष्टि से दूर होता है और जिसका स्तर भी कम होता है।

प्लेटो का विचार था कि अनुकरण में सिद्ध होने के कारण कवि कई कलाओं के रंगों को ही अपने पदों और वाक्यों के रूप में सृजित करता है। उसमें संगीत आदि कलाओं का संयोग हो जाता है और काव्य आकर्षक प्रतीत लगने लगते हैं। वे मानते थे कि यदि काव्य या रचना से उसका मोहक तत्व संगीत आदि बाहर निकाल दिया जाए तो वह प्रभावशून्य हो जाती है। उसके लिए अनुकरण मनोरंजन का ही एक रूप है। उसे वे गंभीर कार्य नहीं मानते। प्लेटो ने अपने अनुकरण में सत्य का उद्घाटन किया है, साथ ही मानव कल्याण एवं राष्ट्रोंत्थान, आनंद प्रदान करना और शिक्षा देना आदि को स्थान दिया है। काव्य विरोधी दृष्टि में नैतिक आधार, भावात्मक आधार, बौद्धिक आधार और शुद्ध उपयोगितावादी आदि को माना है।



अपनी प्रगति जांचें

प्रश्न 1. प्लेटो कवियों को राष्ट्र के लिए अहितकर मानते थे- सतर्क उत्तर दीजिए।



4.6 सारांश

कुल मिलाकर प्लेटो अनुकरण का विरोध दो तरह से करते हैं - पहला दर्शन के आधार पर और दूसरा लोककल्याण या राज्य के हित को देखते हुए। प्लेटो एक महान चिंतक और दार्शनिक हैं। काव्य के संदर्भ में उन्होंने जो विचार व्यक्त किए हैं, वे आज तक संदर्भवान एवं विचारणीय हैं। प्लेटो की सबसे बड़ी देन यही है कि उन्होंने मनुष्य को सोचने के लिए मजबूर किया और उस समीक्षात्मक प्रणाली की ओर उन्मुख किया। उन्होंने कविता के स्तर को उँचा उठाकर मानव-जीवन के साथ उसका सम्बन्ध जोड़ दिया।



4.7 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न 1 का उत्तर : दृष्टि में विशिष्ट सत्य विश्वमान्य सत्य की छाया मात्र है। उसकी दृष्टि में आदर्श ही सत्य है। वस्तु जगत उस आदर्श का अनुकरण मात्र है। उसने पलंग का उदाहरण देकर अपनी बात बताई कि ईश्वर केवल एक पलंग की रचना करता है, वह पलंग आदर्श होता है, शेष जितने पलंग होते हैं, वे सब आदर्श पलंग की नकल मात्र होते हैं। सत्य उसी आदर्श पलंग में निवास करता है, शेष पलंग असत्य है। यही स्थिति कवि की है।

अधिक जानने के लिए 'अनुकरण सिद्धांत' को ध्यानपूर्वक पढ़ें।



4.8 अधिक जानने के लिए पढ़े

1. डॉ. भगीरथ मिश्र–पाश्चात्य काव्यशास्त्र–इतिहास सिद्धांत और वाद, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण 2005।
2. देवेन्द्रनाथ शर्मा– पाश्चात्य काव्यशास्त्र, मयूर बुक्स पब्लिकेशन।
3. अनिल राय– पाश्चात्य काव्यशास्त्र– कुछ सिद्धांत कुछ वाद, शिवालिक प्रकाशन।



4.9 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रश्नों के उत्तर लिखिए :

1. प्लेटो का जन्म कहाँ हुआ था?
2. रिपब्लिक के रचनाकार कौन है?

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए :

1. प्लेटो के अनुकरण सिद्धांत पर प्रकाश डालिए?
2. प्लेटो के काव्य चिंतन की महत्वपूर्ण बातों का उल्लेख कीजिए?
3. प्लेटो के विचारों का बाद के दार्शनिकों पर पड़े प्रभावों का उल्लेख कीजिए?

*** ***** ***

इकाई 5 : त्रासदी सिद्धान्त

इकाई की रूपरेखा

5.1 उद्देश्य

5.2 प्रस्तावना

5.3 त्रासदी सिद्धांत

5.4 सारांश

5.5 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

5.6 अधिक जानने के लिए पढ़े

5.7 अभ्यास प्रश्न

5.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप-

- अरस्तू के बारे में जानेंगे।
- अरस्तू के काव्य सिद्धांत को जान पाएंगे।
- अरस्तू के त्रासदी सिद्धांत से अवगत होंगे।

5. 2 प्रस्तावना

अरस्तू यूरोपीय काव्य चिन्तन के आदि प्रवर्तक तथा यथार्थवादी दार्शनिक है। पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में यूनानी विद्वान अरस्तू (374 ई. पू.-322 ई. पू.) प्रसिद्ध युनानी दार्शनिक प्लेटो का शिष्य थे तथा दूसरी ओर विश्व-विजेता सिकन्दर महान के गुरु होने का गौरव भी उन्हें प्राप्त है। अरस्तू ने विविध विषयों पर लगभग 400 ग्रंथों की रचना की। उनके साहित्य संबंधी विचारों का आधार उनके ग्रंथों में देखने को मिलता हैं। जिसमें तर्क-शास्त्र, भौतिकशास्त्र, मनोविज्ञान, ज्योतिर्विज्ञान, राजनीति-शास्त्र, आचार-शास्त्र, काव्य-शास्त्र आदि अनेक विषयों की सार-गर्भित विवेचना मिलती है। उनके साहित्य-संबंधी विचार काव्य-शास्त्र एवं भाषण-शास्त्र में उपलब्ध है। अरस्तू का काव्यशास्त्र विषयक प्रसिद्ध ग्रन्थ 'पेरिपोइएतिकेस' है। इसमें 26 अध्याय है। इसमें अरस्तु ने काव्य की उत्पत्ति, काव्य की प्रकृति, काव्य का सत्य, काव्य के भेद और काव्य के प्रयोजन इन सभी विषयों पर विचार किया है।

5. 3 त्रासदी सिद्धांत

अरस्तू ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ पोएटिक्स में ट्रैजेडी, एपिक (महाकाव्य) तथा कॉमेडी (सुखान्त नाटक) की चर्चा अनुकरणात्मक काव्य के रूप में की है। ट्रैजेडी का विस्तृत विवेचन

पोएटिक्स के छठे से ग्यारहवें अध्याय तक में किया गया है। ट्रैजेडी के प्रयोग की चर्चा के क्रम में ही उनका प्रसिद्ध विरेचन सिद्धान्त सामने आया। उनके द्वारा प्रतिपादित काव्य सिद्धान्त आज भी प्रासंगिक है।

अरस्तू ने सबसे विस्तृत विवेचन त्रासदी (ट्रैजेडी) का किया है। अपनी पुस्तक पोयटिक्स के छठे से उन्नीसवें अध्याय तक मात्र ट्रैजेडी का ही विवेचन अरस्तू ने किया है। 26 वें यानि अंतिम अध्याय में महाकाव्य और ट्रैजेडी का तुलनात्मक मूल्यांकन किया है। अरस्तू ने त्रासदी की लगभग सभी विशेषताओं को सूत्रबद्ध करने हुए कहा है कि त्रासदी गंभीर स्वत: पूर्ण निश्चित आयाम से युक्त कार्य की अनुकृति का नाम है। यह समाख्यान रूप में न होकर कार्य-व्यापार रूप में होती है। इसका माध्यम नाटक के विभिन्न भागों में तदनुरूप प्रयुक्त सभी प्रकार के आभरणों से अलंकृत भाषा होती है। उसमें करूणा तथा त्रास के उद्वेग के द्वारा इन मनोविकारों का उचित विरेचन किया जाता है। इसे निम्न बिन्दुओं द्वारा समझा जा सकता हैं-

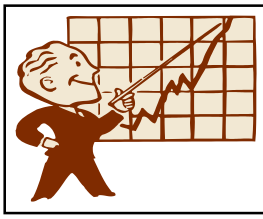
- त्रासदी कार्य की अनुकृति है।
- यह कार्य गंभीर होता है, स्वत: पूर्ण होता है और निश्चित आयाम से युक्त होता है।
- त्रासदी कार्य-व्यापार का वर्णन नहीं, प्रस्तुति होती है।
- इसका माध्यम भाषा होती है। यह भाषा नाटकोचित आभरणों से अलंकृत होती है।
- करूणा तथा त्रास के उद्वेग के द्वारा इन मनोविकारों का उचित विरेचन त्रासदी का कार्य होता है।

अरस्तू के अनुसार त्रासदी के छह तत्व है।

1. कथावस्तु या कथानक
2. चरित्र
3. पदावली
4. विचार तत्व
5. दृश्य विधान
6. संगीत

इस छह तत्वों में सबसे अधिक महत्व अरस्तू ने कथावस्तु को दिया। वे कथावस्तु को प्रबंध काव्यमात्र का और विशेष रूप से त्रासदी का सबसे महत्वपूर्ण अंग, त्रासदी की आत्मा मानते थे। ट्रैजेडी कार्य-व्यापार का अनुकरण है। कार्य-व्यापार घटनाओं के उचित संघटन से गतिशील होता है। चरित्र तो कार्य व्यापार के साथ गौण रूप में चित्रित हो ही जाता है। इसलिए घटनाएं और कथानक ही ट्रैजेडी के साध्य हैं। अरस्तू की दृष्टि में 'बिना कार्य-व्यापार के ट्रैजेडी नहीं हो सकती, बिना चरित्र-चित्रण के हो सकती है।' अरस्तू के अनुसार वे अंग, जो त्रासदी के संगठन पर आश्रित है, चार है- प्रस्तावना, उपाख्यान, उपसंहार और वृन्दगान। त्रासदी का वह भाग जो गायक वृन्द के पूर्वगान से पहले रहता है और त्रासदी की कथावस्तु के लिए भूमिका प्रस्तुत करता है, प्रस्तावना कहलाती है। उपाख्यान वह समग्र अंश है, जो वृन्दगानों के बीच

विद्यमान रहता है। यह आजकल के अंक का समानार्थी है। उपसंहार त्रासदी का वह अंश है जिसके बाद कोई वृन्दगान नहीं होता। इसी को बाद के यूरोपीय नाटकों में 'अन्तिम घटना' या 'कैटेस्ट्रोफी' कहा गया है। वृन्दगान में अनेक गायक नाचते हुए आते थे और त्रासदी की घटनाओं की भावात्मक समीक्षा करते थे।



अपनी प्रगति जांचें

प्रश्न 1. अरस्तु का सामान्य परिचय दीजिए।

त्रासदी एक ओर हमारी सौन्दर्य की भूख को सन्तुष्ट करती है और दूसरी ओर हमें जीवन के गम्भीर सत्यों से परिचित कराती है। वह मनुष्य को उसकी दुर्बलताओं और शक्तियों के साथ प्रस्तुत कर मानव-चरित्र का ज्ञान कराती है। जीवन अनुभव बढ़ाने के कारण भी हम त्रासदी से सुख पाते हैं।



5.4 सारांश

अरस्तू के काव्य सिद्धान्त का महत्व बहुविध है। त्रासदी की सभी विशेषताओं सूत्रबद्ध करने में अरस्तू को सफलता मिली है। अरस्तू का मत है कि यदि करुणा और भय हमारे मन में एकत्र होते हैं तो वे हानिकारक होते है। दु:खांत नाटकों में कृत्रिम रूप से हमारी करुणा और भय को भावनाओं को निकास का अवसर मिल जाता है।



5.5 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न 1 का उत्तर : पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में यूनानी विद्वान अरस्तू (374 ई. पू. - 322 ई.पू.) प्रसिद्ध युनानी दार्शनिक प्लेटो का शिष्य थे तथा दूसरी ओर विश्व-विजेता सिकन्दर महान के गुरु होने का गौरव भी उन्हें प्राप्त है। अरस्तू ने विविध विषयों पर लगभग 400 ग्रंथों की रचना की।

अधिक जानने के लिए देखें 'प्रस्तावना'।



5.6 अधिक जानने के लिए पढ़े

1. डॉ. भगीरथ मिश्र-पाश्चात्य काव्यशास्त्र- इतिहास सिद्धांत और वाद, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण 2005।
2. देवेन्द्रनाथ शर्मा- पाश्चात्य काव्यशास्त्र, मयूर बुक्स पब्लिकेशन।
3. अनिल राय- पाश्चात्य काव्यशास्त्र- कुछ सिद्धांत कुछ वाद, शिवालिक प्रकाशन।



5.7 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रश्नों के उत्तर लिखिए :

1. पोएटिक्स किसकी रचना है?
2. अरस्तु के अनुसार त्रासदी के कितने तत्व हैं?

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए :

1. अरस्तू के त्रासदी सिद्धान्त के तत्वों पर प्रकाश डालिए।
2. अरस्तू के त्रासदी सिद्धान्त का विवेचन कीजिए।

*** ***** ***

इकाई 6 : संप्रेषण सिद्धांत

इकाई की रूपरेखा

6.1 उद्देश्य

6.2 प्रस्तावना

6.3 रिचड्र्स का सामान्य परिचय

6.4 संप्रेषण सिद्धांत

6.5 सारांश

6.6 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

6.7 अधिक जानने के लिए पढ़े

6.8 अभ्यास प्रश्न

6.1 उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के उपरांत आप-

- आई.ए. रिचड्र्स के बारे में जान पाएंगे।
- रिचड्र्स के संप्रेषण सिद्धांत और काव्य भाषा से परिचित होंगे।

6.2 प्रस्तावना

आई.ए. रिचड्र्स का आधुनिक युग में गौरवपूर्ण स्थान है। मुख्य रूप से उनका महत्व इस बात में है कि उन्होंने कला के निरपेक्ष संसार पर आस्था रखने वाली, युग की विविध समीक्षा-पद्धतियों का युक्तियुक्त खण्डन करके आलोचना को वैज्ञानिक आधार पर प्रतिष्ठित किया। साथ ही मनोविज्ञान के आधार पर काव्य के भाव-पक्ष की व्याख्या करते हुए काव्य के मनोवैज्ञानिक मूल्य का सिद्धांत प्रस्तुत किया। वस्तुत: रिचड्र्स की सैद्धांतिक उपलब्धियाँ स्थायी महत्व की अधिकारिणी हैं और उसने काव्य के समर्थन में विज्ञान का सहारा लिया है। रिचड्र्स सौंदर्यानुभूति के संबंध आदर्शवाद को मानते हुए ऐसे कोई पृथक असाधारण अनुभूति नहीं मानता और कला को ऐसा मानवीय व्यापार कहता है, जो मानव मात्र को प्रभावित करने में सक्षम हो।

6.3 सामान्य परिचय

आधुनिक युग के पाश्चात्य समीक्षकों में आई.ए. रिचड्र्स (1893-1979 ई.) का महत्वपूर्ण स्थान है। वे अर्थशास्त्र एवं मनोविज्ञान के विद्यार्थी रहे तथा हार्वर्ड विश्वविद्यालय में अंग्रेजी के प्रोफेसर रहे। वहीं से उन्होंने डी. लिट् की उपाधि प्राप्त की। सी. के. ऑग्डन और जेम्स वुड के साथ सहयोगी लेखन के रूप में उनकी पहली कृति 'द फाउंडेशन ऑफ एस्थेटिक'

1922 ई. में प्रकाशित हुई। उन्होंने लगभग एक दर्जन ग्रंथ लिखे जिनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग्रंथ- 'प्रिंसिपल्स ऑफ लिटरेरी क्रिटिसिज्म' है। इनकी अन्य कृतियाँ 'मेन्सियस ऑफ द माइंड 1931 ई., एक्सपेरिमेंटस इन मल्टीपल डेफिनीशन 1932 ई., बेसिक रूल्स ऑफ रीजन 1933 ई., कॉलरिज ऑन इमेजिनेशन 1934 ई., इंटरप्रिटेशन इन टीचिंग 1938 ई., बोयोड 1974 ई. आदि प्रसिद्ध हैं।

6.4 संप्रेषण सिद्धांत

रिचड्र्स ने क्रोचे के अभिव्यंजनावाद के समान संप्रेषण की अनिवार्यता पर बल दिया है। उन्होंने संप्रेषण को कला का अनिवार्य गुण माना है। उनके उनुसार कला वह माध्यम है जिसके द्वारा कलाकार अपनी अनुभूतियों को दूसरों तक पहुँचाने का प्रयास करता है। अत: प्रभावपूर्ण अभिव्यंजना को ही संप्रेषण कहते हैं तथा संप्रेषण में समर्थ व्यक्ति को कलाकार।



महत्वपूर्ण बिंदु

- आई.ए. रिचर्ड्स का सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग्रंथ- 'प्रिंसिपल्स ऑफ लिटरेरी क्रिटिसिज्म' है।
- आई.ए. रिचर्ड्स का सिद्धांत है- 'संप्रेषण सिद्धांत'।

रिचड्र्स के अनुसार, 'सम्प्रेषण का अर्थ न तो अनुभूति या यथावत् (हू-ब-हू) है और न दो व्यक्तियों के बीच अनुभूति का तादात्म्य, बल्कि कुछ अवस्थाओं में विभिन्न मतों की अनुभूतियों की अत्यन्त समानता ही सम्प्रेषण है।' रिचड्र्स का काव्य संबंधी दूसरा महत्वपूर्ण सिद्धांत संप्रेषणीयता का सिद्धांत है। प्रेषणीयता को स्पष्ट करते हुए रिचड्र्स कहता है- "All that occurs is that under certain conditions separate minds have closely similar experience." अर्थात् प्रेषणीयता में जो कुछ होता है, वह यह है कि कुछ विशेष परिस्थितियों में विभिन्न मस्तिष्क प्राय: एक जैसी अनुभूति प्राप्त करते हैं।

जब किसी वातावरण विशेष से एक व्यक्ति का मस्तिष्क प्रभावित होता है तथा दूसरा उस व्यक्ति की क्रिया से ऐसी अनुभूति प्राप्त करता है कि जो पहले व्यक्ति की अनुभूति के समान होती है, तो उसे प्रेषणीयता कहते हैं।

दूसरे शब्दों में, किसी अन्य की अनुभूति को अनुभूति करना ही प्रेषणीयता है। कवि, कलाकार या सर्जक की अनुभूतियों का भावक द्वारा अनुभव किया जाना ही संप्रेषण है।

प्रेषणीयता के आधारभूत तत्वों पर विचार करते हुए रिचड्र्स ने इसका श्रेय कवि की वर्णन क्षमता और श्रोता या बैठक की ग्रहण शक्ति को दिया है। कला के लिए प्रेषणीयता अत्यावश्यक है, किन्तु क्या इसके लिए कलाकार को विशेष प्रयत्न करने चाहिए? यदि कलाकार स्वयं अपनी रचना को प्रेषणीय बनाने के लिए प्रयत्न करने लगेगा, तो संभव है कि उसकी रचना

में कृत्रिमता आ जाए। इसलिए रिचर्ड्स यह मानता है कि कला में प्रेषणीयता आवश्यक है, किन्तु कलाकार को उसके लिए विशेष प्रयत्न नहीं करना चाहिए। कलाकार जितना सहज स्वाभाविक रूप में अपना कार्य करेगा उसकी अनुभूतियां उतनी ही संप्रेषणीय बनेंगी। संप्रेषण तभी पूर्णता से होता है, जब विषय रोचक एवं रमणीय होता है। कवि जब तक स्वयं अपनी अनुभूतियों के साथ एक रस नहीं हो जाता, तब तक वे अनुभूतियाँ संप्रेषणीयता का गुण ग्रहण नहीं कर सकतीं। संप्रेषण स्वाभाविक व्यापार है। उसके लिए कलाकार को न तो सजग रहने की आवश्यकता है, न प्रयत्न करने की। क्योंकि अनुभूतियों का सहज प्रस्तुतीकरण उस प्रभाव दशा का निर्माण कर देता है, जो कवि ने अनुभूत की थी। इससे प्रेषणीयता में पूर्णता का विधान होता है।

रिचर्ड्स के अनुसार जो कविता पाठक या श्रोता के मन को जितनी अधिक प्रभावित कर पाएगी, जिसमें संप्रेषणीयता जितनी अधिक होगी, वह उतनी ही उत्कृष्ट कहलाएगी।



अपनी प्रगति जांचें

प्रश्न 1. आई.ए. रिचर्ड्स का सामान्य परिचय दीजिए।

रिचर्ड्स कलाओं को संप्रेषण क्रिया का सर्वोत्तम रूप मानते है। मानव सामाजिक प्राणी होने के कारण, बचपन से ही अपने अनुभवों का संप्रेषण करता रहता है। इन्हीं संप्रेषणों के द्वारा मनुष्य को अपने परिवार और समाज से विचार, ज्ञान और अनुभव प्राप्त होते रहते हैं। इसी संप्रेषण-शक्ति के कारण एवं इसी के माध्यम से मानव-समाज का सांस्कृतिक, वैज्ञानिक और तकनीकी विकास हुआ हैं। कला का उद्देश्य है कवि और पाठक के मन में समान मानसिक अवस्था उत्पन्न करना जो प्रेषणीयता से ही सम्भव है। कलाकार की अनुभूति अधिक विस्तृत और मूल्यवान होनी चाहिए। अनुभूति के क्षण में उसके आवेग अधिक क्रियाशील होंगे, कलाकार को अपने इन विभिन्न आवेगों की व्यवस्थित संघटना करनी होगी। वस्तु या स्थिति के पूर्ण बोध के लिए कलाकार में जागरूक निरीक्षण शक्ति होनी भी आवश्यक है। प्रेषणीयता के लिए कलाकार के अनुभवों को अन्य व्यक्तियों के अनुभवों के मेल में भी रहना होगा। सफल संप्रेषण के लिए कलाकार और पाठक के आवेग और उनके विभावों का समान होना आवश्यक हैं। इसी प्रकार संप्रेषणीयता में तीन बात आवश्यक हैं। कलाकार की अनुक्रियाएं एकरस होनी चाहिए। वे पर्याप्त रूप से विभिन्न प्रकार की हो। वे अपने उत्तेजक कारणों द्वारा उत्पन्न किये जाने योग्य हो। इस प्रकार सम्प्रेषण की प्रक्रिया जटिल होते हुए भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि इस संप्रेषण के द्वारा ही कविता का आनन्द पाठक और श्रोता को मिलता हैं। कवि या कलाकार के विशिष्ट अनुभव संप्रेषण के द्वारा ही समाज को पाप्त होते हैं, जिससे ज्ञान और संस्कृति का विकास होता है, संकीर्णता तथा स्वार्थ दूर हटता है और मानव संवेदनाएं परिष्कृत होकर व्यापक और उदान्त बनती है।



6.5 सारांश

काव्य में संप्रेषण का प्रमुख माध्यम भाषा है, जिसका प्रयोग अर्थ को सूचित करने के लिए होता है। भाषा में सामान्यत: चार बातें निहित रहती हैं - वाच्यार्थ, भाव, वाणीगत चेष्टा, अभिप्राय। उचित बिम्बों के प्रयोग और उसकी विशिष्ट साहचर्य योजना एवं भावात्मक सम्बन्ध स्थापना के द्वारा यह कार्य सम्पन्न होता है। रिचड्र्स ने भाषा का विशिष्ट प्रयोग आवश्यक मानते हुए कहा है कि भाषा की संकेतात्मक शक्ति साहित्यकार और पाठकों के मध्य अखंड मानसिक सम्बन्ध उत्पन्न करती है। भाषा दैनिक जीवन में सामान्य तथ्यों को व्यक्त करती है, लेकिन साहित्य में उसके विशिष्ट प्रयोग से विशेष अर्थ का प्रकाशन होता है।



6.6 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न 1 का उत्तर : आधुनिक युग के पाश्चात्य समीक्षकों में आई.ए. रिचड्र्स (1893-1979 ई.) का महत्वपूर्ण स्थान है। वे अर्थशास्त्र एवं मनोविज्ञान के विद्यार्थी रहे तथा हार्वर्ड विश्वविद्यालय में अंग्रेजी के प्रोफेसर रहे। वहीं से उन्होंने डी. लिट् की उपाधि प्राप्त की। अधिक जानने के लिए देखें 'सामान्य परिचय'।



6.7 अधिक जानने के लिए पढ़े

1. डॉ. भगीरथ मिश्र- पाश्चात्य काव्यशास्त्र- इतिहास सिद्धांत और वाद, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण 2005।
2. देवेन्द्रनाथ शर्मा- पाश्चात्य काव्यशास्त्र, मयूर बुक्स पब्लिकेशन।
3. अनिल राय- पाश्चात्य काव्यशास्त्र- कुछ सिद्धांत कुछ वाद, शिवालिक प्रकाशन।



6.8 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रश्नों के उत्तर लिखिए :

1. प्रिंसिपल्स ऑफ लिटरेरी क्रिटिसिज्म का रचनाकार कौन है?
2. रिचड्र्स के अनुसार सम्प्रेषण का अर्थ क्या है?

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए :

1. रिचड्र्स का परिचय दीजिए ?
2. संप्रेषण से आप क्या समझते हैं ? विस्तार से लिखिए ?
3. संप्रेषण के मूलभूत बातों पर प्रकाश डालिए ?

*** ***** ***

इकाई 7 : अभिव्यंजना सिद्धांत

इकाई की रूपरेखा

7.1 उद्देश्य
7.2 प्रस्तावना
7.3 अभिव्यंजनावाद
7.4 कला क्या है? कला और सहजानुभूति का सम्बन्ध
7.5 सौन्दर्यशास्त्र और आदर्शवादी दर्शन
7.6 सहाजानुभूति और अभिव्यंजना
7.7 सौन्दर्य : रूप और अन्तर्वस्तु का सम्बन्ध
7.8 सारांश
7.9 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)
7.10 अधिक जानने के लिए पढ़े
7.11 अभ्यास प्रश्न

7.1 उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के उपरांत आप-

- क्रोचे की कला सम्बन्धी विचार से परिचय प्राप्त करेंगे।
- कला और सहजानुभूति का संबंध जान पाएंगे।
- सहजानुभूति और अभिव्यंजना के संबंध से अवगत होंगे।
- रूप और अन्तर्वस्तु का संबंध के बारे में परिचय प्राप्त करेंगे।

7. 2 प्रस्तावना

सन् 1901 में इटली के दार्शनिक बेनेदेत्तो क्रोचे 'एस्थेटिका' शीर्षक से सौन्दर्यशास्त्र की एक पुस्तक लिखी। बारह वर्षों बाद इटली की राइस संस्था द्वारा सौन्दर्यशास्त्र पर आयोजित गोष्ठी में उन्होंने चार व्याख्यान दिए। व्याख्यान का शीर्षक था - कला क्या है? कला-विषयक भ्रान्त धारणाएँ, अन्तरात्मा और मानव समाज में कला का स्थान तथा समालोचना और कला का इतिहास। विचार और प्रगति के मानदण्ड से क्रोचे की स्थापनाएँ अब बहुत पुरानी पड़ चुकी हैं और बहुत हद तक निरर्थक भी। किन्तु तथ्य है कि सौन्दर्यशास्त्र के इतिहास में क्रोचे का हस्तक्षेप ऐसी घटना है, जिसने सौन्दर्य मीमांसा को दार्शनिक आधार दिया और लम्बे समय तक परवर्ती विचारकों के मन में इस भ्रम को जिंदा रखा कि कला और साहित्य एक पूर्णत: स्वतन्त्र एवं स्वायत्त दुनिया होती है, जो न केवल अन्य भौतिक प्रपंचों से भिन्नत होती है, अपितु उसका

निषेधक भी होती है। आज उस विचार को 'कला कला के लिए' अथवा 'अभिव्यंजनावाद' के नाम से जाना जाता है। उसकी जबर्दस्त प्रभावशीलता को तो आचार्य शुक्ल ने स्वीकारा, पर क्रोचे की मान्यताओं का तार्किक विश्लेषण करते हुए अपने लम्बे निबन्ध काव्य में अभिव्यंजनावाद में उन्हें प्राय: छिन्नेमूल कर दिया। किन्तु क्रोचे ने जिस कलावाद को जन्म दिया, उसके जीवाणु आज भी भिन्न रंग में और अलग-अलग वेषभूषा में उत्तर-औपनिवेशिक साहित्य-सैद्धान्तिकी, शैली विज्ञान, रूपवाद, संरचनावाद, उत्तर संरचनावाद एवं कुछ हद तक देरिदा के विखण्डनवाद में भी मौजूद है।

7.3 अभिव्यंजनावाद

अभिव्यंजनावाद एक आधुनिकतावादी आन्दोलन था, जो 20 वीं शताब्दी के आरम्भ में जर्मनी से आरम्भ हुआ था। पहले यह काव्य (पोएट्री) और चित्रकला के क्षेत्र में आया था। सिद्धान्त रूप में इसका साहित्यिक प्रतिपादन इटली के विचारक बेनेदेत्तो क्रोचे ने किया। क्रोचे के अनुसार 'अंत:प्रज्ञा के क्षणों में आत्मा की सहजानुभूति ही अभिव्यंजना है।' कला के क्षेत्र में इसे आवाँ गार्द (avant-garde/अग्रगामी) के रूप में जाना जाता है।

अभिव्यंजनावाद की मूल संकल्पना है कि कला का अनुभव बिजली की कौंध की तरह होता है, अत: यह शैली वर्णनात्मक अथवा चाक्षुष न होकर विश्लेषणात्मक और आभ्यंतरिक होती है। उस भाववादी (इंप्रेशनिस्टिक) शैली के विपरीत जिसमें कलाकार की अभिरुचि प्रकाश और गति में ही केंद्रित होती है। यहीं तक सीमित न होकर अभिव्यंजनावादी प्रकाश का प्रयोग बाह्म रूप को भीतर का तथ्य प्राप्त कर लेने, आन्तरिक सत्य से साक्षात्कार करने और गति के भावप्रक्षेपण और आत्मान्वेषण के लिए करता है। वह रूप, रंगादि के विरूपण द्वारा वस्तुओं का स्वाभाविक आकार नष्ट कर अनेक आंतरिक आवेगात्मक सत्य को ढूँढ़ता है। आइए उनके सिद्धांत को देखते हैं-



महत्वपूर्ण बिंदु

- क्रोचे का सिद्धांत 'अभिव्यंजनावाद' है।
- अभिव्यंजनावाद को 'कला कला के लिए' नाम से भी जाता है।

7.4 कला क्या है? कला और सहजानुभूति का सम्बन्ध

सन् 1901 की एस्थेटिका में क्रोचे ने कला ने कला को 'सहजानुभूति' कहा। बारह साल बाद उन्होंने सहजानुभूति को 'गीतात्मक' कहा, अर्थात गीतात्मक सहजानुभूति। राइस वाले भाषण में उन्होंने 'कला क्या है?' वाले प्रसंग में कहा- 'कला सम्प्रतीति (विजन) अथवा

सहजानुभूति है। कलाकार एक बिम्ब अथवा छायामास का सृजन करता है, जो कई कला का रसास्वादन करता है, वह कलाकार की ही व्यंजना पर अपना ध्यान केन्द्रित करता है और कलाकार द्वारा खोले हुए वातायण से झाँकता है और अपने अन्तर में उस बिम्ब की प्रति सृष्टि करता है।'

क्रोचे के यहाँ 'सहजानुभूति' एक निषेधात्मक अवधारणा है, जो उसे 'अन्यों' से अलग करती है। उसके अनुसार - 'सबसे पहले तो यह (सहजानुभूति) इस बात का खण्डन करता है कि कला एक भौतिक वस्तु है। उदाहरण के लिए कुछ निश्चित रंग या रंगों के आपसी सम्बन्ध; कुछ आकृतियों के सुनिश्चित रूप; कुछ निश्चात स्वर या स्वर सम्बन्ध; ऊष्मा या विद्युत के गोचर तत्व-सारांश में जिस किसी चीज को 'भौतिक' क हा जा सके। कला के भौतिकीकरण की यह भ्रान्तिपूर्ण प्रवृत्ति साधारण विचार-विमर्श में पहले से ही विद्यमान है और जैसे बच्चे छूते तो साबुन की फेन है, पर कामना करते हैं इन्द्रधनुष पकड़ने की, वैसे ही सुन्दर वस्तुओं की सराहना करने वाली मानव आत्मा स्वत: उन (वस्तुओं) के कारणों का बाह्य जगत में पता लगाने के लिए उतावली रहती है।

क्रोचे लिखते है- 'यदि कला सहजानुभूति है और सहजानुभूति 'भावन' (कण्टेम्प्लेसन) के मौलिक अर्थ सिद्धान्त की पर्याय है, तो कला एक 'उपयोगी' व्यापार नहीं हो सकती। चूँकि हर उपयोगी व्यापार का लक्ष्य सदैव सुख की प्राप्ति और दु:ख से निवृत्ति होता है, इसलिए सच्ची कला का 'उपयोगिता', 'सुख', 'दु:ख' आदि से कोई सम्बन्ध नहीं। वास्तव में बिना अधिक झंझट के यह सर्वथा मान्य होना चाहिए।' क्रोचे की दृष्टि में कलानुभूति एवं जीवनुभूति में कोई सम्बन्ध नहीं होता। सहजानुभूति की निषेधात्मकता का दूसरा पक्ष है।

'कला सहजानुभूति है' इस परिभाषा से जिस तीसरे निषेध की व्यंजना होती है, वह यह कि कला नैतिक व्यापार नहीं है। वह एक ऐसा व्यापार है जो उच्च तर मानसिक क्षेत्र से सम्बन्धित होता है। क्रोचे लिखते हैं, ''सहजानुभूति एक अमूर्त या काल्पनिक व्यापार होने के कारण सभी प्रकार के व्यावहारिक व्यापारों के विरुद्ध होती है। कला संकल्पजन्य नहीं होती, यानी 'ऐन एक्ट ऑफ विल।' संकल्प नीतिपरक व्यक्ति का अविच्छिन्न गुण है, कलाकार का नहीं। चूँकि कला किसी संकल्प (या इच्छा कह लें) की उपज नहीं होती, इसलिए इस पर नैतिक उहापोह लागू नहीं होते। जिस एक कलात्मक चित्र नैतिक दृष्टि से श्लारघ्य या हेय कार्य को प्रस्तुत करता है; पर वह चित्र, चित्र के रूप में न तो नैतिक दृष्टि से श्लापघ्य होता है, न हेय ही। एक चित्र को जेल भेजने या मृत्युदण्ड देने के लिए कोई व्यवस्था नहीं।' यानी कला में नैतिकता, शैक्षिक प्रयोजनशीलता, जीवनादर्शों पर प्रतिबन्ध आदि लागू नहीं होता है।

इस सन्दर्भ में सबसे महत्वपूर्ण है क्रोचे द्वारा किया गया कला-सम्बन्धी ज्ञान और तर्क-सम्बन्धी ज्ञान का द्विविभाजन। क्रोचे बताते हैं कि ज्ञान के दो रूप हैं- एक तो सहज है और दूसरा तर्क-शक्ति द्वारा प्राप्त । अर्थात सहजानुभूत ज्ञान और प्रज्ञामूलक अवधारणात्मक ज्ञान। गर्म वस्तु को छूने से जलन होती है, सहजानुभूत ज्ञान है। अधीनस्थ वर्गों का शोषण अवधारणात्मक ज्ञान

है। पहले का सम्बन्ध कल्पना प्रसूत ज्ञान से है, जो चित्र, काव्य, संगीत, नृत्य, प्रेरणा, उच्छ्वास, शब्द, कोमलता आदि से मिलता है। उसे हम मनोभावों के रूप में ग्रहण करते हैं। तर्क ज्ञान का सम्बन्ध वैयक्तिक अथवा सार्वत्रिक (समष्टिगत) ज्ञान, विशिष्ट वस्तुओं का ज्ञान अथवा उनके परस्पर सम्बन्धों का ज्ञान, जिसे हम दार्शनिक सूत्र वचनों अथवा विकल्पात्मक बुद्धि द्वारा प्राप्तो करते हैं। मस्तिष्क तथा सहज ज्ञान अथवा तर्क तथा कल्पना; ज्ञान के दो मूल स्त्रोत हैं। ये स्त्रोत भिन्न ही नहीं हैं, विरोधी भी हैं। परस्पर शत्रुता की हद तक। सभी ज्ञान अभिव्यंजना है, किन्तु सभी अभिव्यंजना कला नहीं है।

क्रोचे ने इनकी परस्पर भिन्नहता और शत्रु-भाव के विषय में लिखा 'सहजानुभूति-कला प्रत्ययमूलक ज्ञान का खण्डन है। अपने सच्चे अर्थात दार्शनिक रूप में प्रत्ययमूलक ज्ञान (कंसेप्चुअल नॉलेज) नित्य यथार्थवादी होता है। इसका ध्येय या तो असत्य के विरुद्ध सत्य की स्थापना करना होता है या उस (सत्य) के अन्तर्गत निविष्ट करके और उसी का एक उपाश्रित अंग मानकर असत्य का अपक्षय करना। पर सहजानुभूति का अर्थ है किसी चित्र का चित्र-रूप में ग्रहण, चित्र की नितान्त आदर्शमयता (जो चित्रकार-मन में पहले से आदर्श-रूप में प्रतिष्ठित होता है) इस मूलभूत स्वरूप (कला) का स्वतन्त्र अस्तित्व है। इस ज्ञान की उपमा काल्पनिक जीवन के स्वप्नव (निद्रा नहीं स्वप्न) से दी जाती है और दर्शन की उसके जागरण से। अत: सहजानुभूत्यात्मक और प्रत्ययमूलक अथवा बुद्धिपरक ज्ञान परस्पर विरोधी हैं।... आदर्शमयता (वह गुण जो सहजानुभूति को प्रत्यय से, कला को सामान्य प्रत्यय का प्रतिपादन करने वाले दर्शन और घटना-विवरण वाले इतिहास से अलग करती है) कला की अपनी विशेषता है। ज्योंहि उस आदर्शमयता से चिन्तन और निर्धारण का विकास होता है, त्योंहि कला छिन्न-भिन्न होकर मर जाती ... (दरअसल) कला में उस चिन्तन का अभाव है, जो पुराण के लिए अनिवार्य है। कला में उस आस्था का अभाव है जो चिन्तन-तत्व से उत्पन्नए होती है। कलाकार अपने चित्र में न तो विश्वास करता है और न अविश्वस, वह उसका सृजन करता है।'

इस आदर्शमयता का रहस्य क्या है, जिससे टूट कर कला विपथगा हो जाती है? उसे समझना चाहिए।

7.5 सौन्दर्यशास्त्र और आदर्शवादी दर्शन

क्रोचे का अखण्ड विश्वास है कि कलाकार के मानस में अनेक रूपेण प्रभाव विचरण किया करते हैं और कलाकार सहज ज्ञान द्वारा मानसिक क्षेत्र के अन्दर उसका कलात्मक आनन्द उठाया करते हैं। उनका यह भी विश्वास है कि ''वह कला, जो नीति, सुख या दर्शन पर निर्भर करती है, वह नीति, सुख या दर्शन ही है, कला नहीं। सहजानुभूति के रूप में कला भौतिक जगत और व्यावहारिक, नैतिक और प्रत्ययमूलक व्यापारों से भिन्न है, क्योंकि वास्तव में उनका अस्तित्व होता ही नहीं है। इसलिए 'नग्न अभिव्यंजना का सम्बन्ध विचार और दर्शन (तर्क-वितर्क) से है और अलंकृत अभिव्यंजना का काव्य और कल्पना से।''

क्रोचे का विचार है कि सत्य तथा यथार्थ का केवल एक ही केन्द्र है और वह है, मानव मस्तिष्क। जो विचारक यह समझते हैं कि सत्य और यथार्थ-मनुष्य का अन्तर्बाह्य जीवन-दो रूप हैं, गलती करते हैं। केवल मस्तिष्क में ही दोनों निहित रहते हैं। बाह्य संसार में उनका कोई स्थान नहीं है। दूसरे शब्दों में जो भी हमारे मन में प्रतिष्ठित है, वही सत्य तथा यथार्थ है और जो भी बाह्य रूप में हमारे सम्मुख स्थित हैं, वह सत्य और यथार्थ से कहीं दूर है। जो कुछ भी बाह्य-रूप हम देखते हैं, उसे मानव-मन ने स्वत: अपनी सहूलियत के लिए निर्मित कर लिया है, क्योंकि इसके द्वारा वह आसानी से अपना कार्य-सम्पादन कर लेता है।

दरअसल क्रोचे की सहजानुभूति में निहित दार्शनिकता पुराने प्लेटोवाद का नया भाष्य है। प्लेटो की तरह क्रोचे भी स्वीकार करते हैं कि 'जब यह विश्वास किया जाता था कि ज्ञान द्वारा अपनी-अपनी आत्मा को ईश्वर तक, आदर्श तक, विचारों के संसार तक, प्रत्यक्ष मानवीय संसार से ऊपर निरपेक्ष तत्व तक उठाया जा सकता है; और यह स्वाभाविक ही था, उस विचार-तत्व का सामना उस सत्य से हो गया, जो सत्य नहीं रहा।' इसलिए 'वे युग कविता के विकास के लिए उर्वर नहीं होते, जिनमें गणित और भौतिकशास्त्रों का बोलबाला होता है।'

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सन् 1935 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के चौबीसवें अधिवेशन में साहित्य परिषद् के सभापति पद से एक व्याख्यान दिया था, जो बाद में काव्य में अभिव्यंजनावाद शीर्षक से प्रकाशित हुआ। उन्होंने अपने व्याख्यान में क्रोचे के सौन्दर्य-चिन्तन का मर्म समझाया है। सहजानुभूति की कलात्मक अभिव्यंजना के लिए क्रोचे ने कला-सम्बन्धी ज्ञान को स्वयंप्रकाश ज्ञान बताकर प्रत्यक्षमूलक ज्ञान से उसे अलग किया था। आचार्य शुक्ल ने समझाया कि 'स्वयंप्रकाश ज्ञान का अभिप्राय है मन में आप से आप, बिना बुद्धि की क्रिया या सोच-विचार के, उठी हुई मूर्त भावना, जिसकी वास्तविकता-अवास्तविकता का कोई सवाल नहीं।' यह मूर्त भावना या कल्पना आत्मा की अपनी क्रिया है, जो दृश्य जगत के नाना रूपों और व्यापारों को (मन में संचित उनकी छापों या संस्कारों को) द्रव्य या उपादान की तरह लेकर हुआ करती है। दृश्य जगत के नाना रूप-व्यापार है, द्रव्य। इसी द्रव्य के सहारे आत्मा की क्रिया मूर्त रूप में अपना प्रकाश करती है। जो मनुष्य की आत्मा द्रव्य की प्रतीति मात्र करती है, उसकी सृष्टि नहीं करती। आत्मा की अपनी स्वतन्त्र क्रिया है कल्पना, जो रूप का सूक्ष्म साँचा खड़ा करती है और उस साँचे में स्थूल द्रव्य को ढालकर अपनी कृति को गोचर या व्यक्त करती है। यह साँचा आत्मा की कृति या आध्यात्मिक वस्तु होने के कारण, परमार्थत: एकारस और स्थिर होता है। उसकी अभिव्यंजना में जो बहुलता दिखाई पड़ती है, वह स्थूल 'द्रव्य' के कारण; और वह परिवर्तनशील होता है। कला के क्षेत्र में यही 'साँचा' (Form) सब कुछ है; 'द्रव्य' या सामग्री ध्यान देने की वस्तु नहीं।

7.6 सहाजानुभूति और अभिव्यंजना

क्रोचे का तर्क है कि अभिव्यंजना सिर्फ रूप की होती है। कला-सृजन में रूप-निर्माण में अभिव्यंजना की स्वाभाविक क्षमता होती है। रेखा, रंग, ध्वनि, चित्र, संगीत, वाग्मिता आदि

द्वारा अभिव्यंजना-क्रिया पूरी होती है, क्योंकि सहजानुभूति अभिव्यंजना के रूपों के साथ जन्म लेती है। मसलन रेखागणित या अंकगणित की सहजानुभूति हमें तब तक नहीं हो सकती, जब तक कि उसका कोई ऐसा रूप न हो जिसे कागज पर उतारा न जा सके। भावों के रूपाकृति में ढलने के क्षणों में ही व्यक्ति को रूप के आन्तरिक प्रकाश का अनुभव होता है। यह आन्तरिक प्रकाश प्रातिभ ज्ञान या 'इण्ट्यूशन' है, जो अकस्मात उदित होकर प्रकट होता है।

क्रोचे का पुन: तर्क है कि यदि स्वयं प्रकाश ज्ञान, प्रातिभ ज्ञान का सचमुच उदय हुआ है, भीतर उसकी अभिव्यंजना हुई है, तो वह बाहर प्रकाशित हुए बिना नहीं रह सकती। जो भावना या कल्पना व्यक्तह नहीं हुआ, उसका पूर्ण परिपाक नहीं हुई। अत: क्रोचे इस तर्क को नहीं मानते कि कवि के मन में बहुत सारी भावनाएँ थीं, जिन्हें वह अच्छी तरह व्यक्तक नहीं कर सका।

सहजानुभूति और अभिव्यंजना अभेद हैं। इसी आधार पर वह साहित्य-विधाओं के वर्गीकरण को निरर्थक मानते हैं।'वे कला की सिद्धि में कोई योग न देकर केवल तर्क या शास्त्रन पक्ष में सहायक होते हैं। इन सबका मूल्य केवल वैज्ञानिक समीक्षा में है, कला निरूपिणी समीक्षा में नहीं।' इसी तर्क से वह मुक्तबक सुखान्तिकी-दु:खान्तिकी, रोमांस, महाकाव्य, ग्राम्यगीत, हास्य, चित्रकला, संगीत कला, शिल्प कला, नाटक आदि के रूप में किए गए विभेदों को खारिज करते हैं। उनका दृढ़ विश्वारस है कि 'कला के विशिष्ट रूपों में विभेद किया जा सकता, उनमें से प्रत्येक को अपने विशिष्ट प्रत्यय और अपनी विशिष्ट सीमाओं में निर्धारित किया जा सकता है; भ्रान्तिपूर्ण सिद्धान्त है।'

ऐसा क्रोचे को दो कारणों से प्रतीत होता है। एक तो 'विभेदों और कलाओं के बीच न्यायसंगत सीमा-रेखा खींचना असम्भव हो जाता है- (तथा) उनकी सभी परिभाषाओं की जब सूक्ष्म रूप से परीक्षा की जाती है, तो वे या तो कला की व्यापक परिभाषा में विलीन हो जाती है, या तर्क के कठोर स्तर पर इन विभेदों और नियमों को उठा दिया जाता है, (जो प्रत्ययमूलकता कला का प्राण ही नहीं है)।'

क्रोचे ने यह कहकर किया कि 'कला सहजानुभूति या गीतात्मक सहजानुभूति है, इस धारणा का ही पक्ष है; और चूँकि एक कलाकृत्ति एक मन:स्थिति को अभिव्यंजित करती है और वह मन:स्थिति सदैव व्यक्तिगत और नवीन होती है; अतएव 'सहजानुभूति' से अनन्त सहजानुभूतियाँ उपलक्षित होती हैं, जिन्हें 'विभेदों' के कठघरे में तब कर बन्द नहीं किया जा सकता, जब तक उसमें अनन्त कठघरे न हों और इस प्रकार 'विभेदों' के नहीं, अपितु सहजानुभूतियों के कठघरे।' चूँकि कला की गुणवत्ता उसके अलंकारादि बाह्य उपकरणों से तय नहीं होती, आत्मा पर उसके पड़ने वाले प्रभाव से तय होती है, इसलिए अभिव्यंजना के भौतिक साधनों अथवा इसी तरह के दूसरे विभेद और वर्गीकरण निरर्थक हैं। इसका अर्थ यह है कि कला-विभाजन के सभी सिद्धान्त निराधार हैं। एतदर्थ केवल एक विभेद या वर्ग है, वह है स्वयंकला या सहजानुभूति। अत: क्रोचे की स्थापना है कि 'सहजानुभूत ज्ञान अभिव्यंजनात्मक ज्ञान है। वह बौद्धिक क्रिया से स्वतन्त्र और स्वायत्त है, परवर्ती अनुभवाश्रित प्रभेदों, यथार्थ और अयथार्थ, स्थान और काल के रूप-

संघटनों और अवबोधन के प्रति वह उदासीन है। सहजानुभूति अथवा प्रतिभा ज्ञान रूप है और इसलिए उससे भिन्न जो अनुभव है, वह संवेदन के प्रवाह अथवा तरंग से भिन्न है, वह मानसिक वस्तु से भिन्न है। यह रूप, यह अधिकृत अभिव्यंजना है। सहजानुभूति होना अभिव्यंजित होना है और सिर्फ अभिव्यंजित होना है इससे न कुछ अधिक न कम।'



अपनी प्रगति जांचें

प्रश्न 1. क्रोचे की सहानुभूति संबंधी अवधारणा पर विचार कीजिए।

प्रश्न 2. सौन्दर्य पर क्रोचे की विचारों पर प्रकाश डालिए।

7.7 सौन्दर्य : रूप और अन्तर्वस्तु का सम्बन्ध

क्रोचे ने कला में 'सुन्दर' शब्द को एक विशेष अर्थ में स्वीकार किया है। चूँकि कला में सुखात्मक-दु:खात्मक, उपयोगी, लाभकारी-हानिकारक का कोई मूल्य नहीं है, नैतिकता-अनैतिकता का कोई स्थान नहीं है, ये सब मनुष्य की व्यवसायात्मिका बुद्धि के चमत्कार हैं, इसलिए काव्य और कला का मूल्य सिर्फ 'सुन्दर' शब्द से बताया जा सकता है। वहाँ सुन्दर से अभिप्राय सिर्फ अभिव्यंजना के सौन्दर्य से है, उक्ति कौशल से है, न कि किसी वस्तु या प्रस्तुत के सौन्दर्य से। भौतिक सृजन में, रूपनिर्माण में, अभिव्यक्त कौशल में स्वयं-प्रकाश्य आत्मा में सौन्दर्य है। भौतिक जीवन में सौन्दर्य नहीं होता। जब वह वक्रोक्ति आदि उक्ति वैचित्र्य में प्रकट होता है, तो सुन्दर दिखाई देने लगता है। दैनन्दिन अनुभवों को क्रोचे ने सौन्दर्य से बाहर रखा। कला में सुन्दर-असुन्दर दोनों उक्ति ही है, अभिव्यंजना की उक्ति के स्वरूप में है।

क्रोचे मानते हैं कि सहजानुभूति सिर्फ रूप की होती है, वस्तु या प्रस्तुत विधान की नहीं। भौतिक अभिव्यंजनाएँ, जैसे कवि के शब्द, चित्रकार की खींची गई आकृतियाँ (सौन्दर्यात्मक कृति) सदैव आन्तरिक होती हैं, और जिसे बहिर्गत कहा जाता है, वह कलाकृति नहीं। सहजानुभूति अभिव्यंजना के लिए अपने अनुकूल सहजानुभूत रूप की कल्प-सृष्टि करती चलती है, क्योंकि उसकी प्रकृति ही रूपात्मक होती है।



7.8 सारांश

मूल रूप से कहा जा सकता है कि सौन्दर्य-सिद्धि रूप-सिद्धि है। वह एक मानसिक क्रिया है, जो जीवनानुभवों से स्वतन्त्र होकर कलात्मक अभिव्यक्ति के स्थान का अधिकारी होता है, उसकी पूर्ण स्वायत्तता की रचना करता है। क्रोचे की दृष्टि में कलाकार के अनुभव का कोई

महत्व नहीं है। कलाकार के लिए महत्वपूर्ण है वह रूप, जिसे वह कल्पना द्वारा आकृति देता है, न कि वे जीवनानुभूतियाँ, जो देश-कालगत परिस्थितियों के अनुकूल नई कला-विधाओं अथवा कला-रूपों को जन्म देती हैं। मसलन आधुनिक काल में देवताओं की दुनिया वाले महाकाव्य विधा की विदाई और समस्यामूलक नायक के साथ आधुनिक उपन्यास का उदय। वस्तुत: क्रोचे का अभिव्यंजनावाद वस्तु के अन्तरंग को बहुरंग बनाए बिना प्रकट करना चाहता है।



7.9 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न 1 का उत्तर : क्रोचे के अनुसार रेखा, रंग, ध्वनि, चित्र, संगीत, वाग्मिता आदि द्वारा अभिव्यंजना-क्रिया पूरी होती है, क्योंकि सहजानुभूति अभिव्यंजना के रूपों के साथ जन्म लेती है। मसलन रेखागणित या अंकगणित की सहजानुभूति हमें तब तक नहीं हो सकती, जब तक कि उसका कोई ऐसा रूप न हो जिसे कागज पर उतारा न जा सके।

अधिक जानने के लिए 'सहाजानुभूति और अभिव्यंजना' को ध्यानपूर्वक पढ़ें।

प्रश्न 2 का उत्तर : क्रोचे ने कला में 'सुन्दर' शब्द को एक विशेष अर्थ में स्वीकार किया है। चूँकि कला में सुखात्मक-दु:खात्मक, उपयोगी, लाभकारी-हानिकारक का कोई मूल्य नहीं है, नैतिकता-अनैतिकता का कोई स्थान नहीं है, ये सब मनुष्य की व्यवसायात्मिका बुद्धि के चमत्कार हैं, इसलिए काव्य और कला का मूल्य सिर्फ 'सुन्दर' शब्द से बताया जा सकता है।

अधिक जानने के लिए 'सौन्दर्य रूप और अन्तर्वस्तु का सम्बन्ध' को देखें।



7.10 अधिक जानने के लिए पढ़े

1. श्रीकांत खरे (अनुवादक)- सौन्दर्यशास्त्र के मूल तत्व, राइस संस्थान के व्याख्यानों का हिन्दी अनुवाद, किताब महल, इलाहाबाद 1967।
2. बच्चन सिंह- आलोचक और आलोचना, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
3. करुणाशंकर उपाध्याय- पाश्चात्य काव्य-चिन्तन, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।



7.11 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रश्नों के उत्तर लिखिए :

1. अभिव्यंजनावाद के जनक कौन है ?
2. क्रोचे का जन्म कहाँ हुआ था ?

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए :

1. क्रोचे का सम्पूर्ण नाम क्या है ? उनके द्वारा दिए गए सहजानुभूति और अभिव्यंजना के संबंध को स्पष्ट कीजिये।
2. अभिव्यंजन सिद्धांत पर आलोचना कीजिये।
3. क्रोचे का परिचय देते हुए, अभिव्यंजनावाद से आप क्या समझते हैं ? समझाए।

*** ***** ***

इकाई 8 : निर्वैयक्तिकता सिद्धांत

इकाई की रूपरेखा

8.1 उद्देश्य

8.2 प्रस्तावना

8.3 इलियट का सामान्य परिचय

8.4 निर्वैयक्तिकता का सिद्धांत

8.5 सारांश

8.6 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

8.7 अधिक जानने के लिए पढ़े

8.8 अभ्यास प्रश्न

8.1 उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के उपरांत आप–

- इलियट के बार में जान पाएंगे।
- इलियट के काव्य सिद्धांत से परिचय प्राप्त करेंगे।
- निर्वैयक्तिकता के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।
- निर्वैयक्तिकता सिद्धांत की समीक्षा से अवगत होंगे।

8.2 प्रस्तावना

टी. एस. इलियट काव्य के स्पष्टा और आलोचक दोनों ही रूपों में आधुनिक अँग्रेजी साहित्य में विख्यात हैं। उनके काव्य और चिन्तन में एकरूपता मिलती है। आलोचनात्मक निबन्धों में उन्होंने जिन काव्यगत विशेषताओं और सिद्धान्तों का उल्लेख किया है, उन्हीं को उन्होंने अपने काव्य में व्यावहारिक रूप प्रदान किया है। इसी प्रकार उनके इतिहास और संस्कृति सम्बन्धी विचार उनकी कविता और आलोचना से ध्वनित हुए हैं। इलियट ने साहित्य में चले आ रहे स्वच्छन्दतावाद के दीर्घकालीन आधिपत्य को अस्वीकार करते हुए क्लासिकल मत का प्रतिपादन किया तथा कला के मूर्त रूप को विशेष महत्व देते हुए कला को कलाकार का आत्म-प्रकाशन मात्र मानने वाले सभी सिद्धान्तों की विस्तृत आलोचना की हैं।

8.3 सामान्य परिचय

बीसवीं शताब्दी में पाश्चात्य समीक्षा को प्रभावित करने वाले विचारकों में टी. एस. इलियट (टॉमस स्टलर्स इलियट) का नाम अत्यंत महत्वपूर्ण है। वे एक साथ सर्वाधिक प्रभावशाली

कवि, नाटककार तथा समीक्षक थे। टी. एस. इलियट का जन्म 26 सितंबर, 1888 को सेंटलुई, मिसौरी (अमेरिका) में हुआ था। उनकी शिक्षा पेरिस और लंदन में हुई। इलियट ने एजरा पाउण्ड के साथ मिलकर बिम्बवादी आन्दोलन का नेतृत्व किया। उन्हें 1948 ई. में साहित्य का नोबेल पुरस्कार भी प्राप्त हुआ और सन् 1965 में इनका निधन हो गया। इनकी प्रसिद्ध कृतियाँ- 'द लव सांग ऑफ एल्फर्ड प्रुफ्रॉक' 1915 ई., 'दि सक्रेड वुड' 1920 ई., 'द वेस्ट लैंड' 1922 ई., 'होमेज टु जॉन ड्राइडन' 1924 ई., 'एलिजाबेथेन एसेज' 1934 ई., 'दि यूज ऑफ पोयट्री एण्ड दि यूज ऑफ क्रिटिसिज्म' 1933 ई., 'सेलेक्टेड एसेज' 1932 ई., 'पोयट्री एण्ड ड्रामा' 1941 ई., 'दि थ्री यूजेज ऑफ पोयट्री' 1953 ई., 'सेजेक्टेड प्रोज' 1953 ई., 'फोर क्वार्टस' 1942 ई., 'मर्डर इन कैथीड्रिल' 1935 ई., 'द फैमिली रियूनियन' 1939 ई., 'द कॉकटेल पार्टी' 1949 ई., 'ऑन पोयट्री एण्ड पोयट्स' 1957 ई. आदि हैं। इलियट की आलोचना का मूल आधार उनका प्रसिद्ध निबन्ध 'ट्रेडिशन एण्ड दि इंडिविजुअल टैलेंट' है। यह 'दि सक्रेड वुड' में प्रकाशित हुआ था। जिसमे साहित्य की आधारभूत एवं मौलिक समस्याओं पर प्रभावी ढंग से विचार किया गया है।

इलियट ने संस्कृत और पालि भाषा में साहित्य का अध्ययन किया। इन्हें विवादास्पद पाश्चात्य समीक्षक भी कहा जाता है, क्योंकि इनके कवि, कविता, साहित्या-समीक्षा आदि से संबंधित मत महत्वपूर्ण होने के साथ-साथ विवादास्पद भी है।



महत्वपूर्ण बिंदु

- टी. एस. इलियट को 1948 ई. में साहित्य का नोबेल पुरस्कार मिला।
- इलियट ने एजरा पाउण्ड के साथ मिलकर बिम्बवादी आन्दोलन का नेतृत्व किया।

8.4 निर्वैयक्तिकता का सिद्धांत

टी. एस. इलियट ने आत्मनिष्ठ वैयक्तिक साहित्य के स्थान से वस्तुनिष्ठ अथवा निर्वैयक्तिक साहित्य की प्रतिष्ठा की और कला की सार्वभौमिकता का प्रतिपादन किया। उनके अनुसार कवि के लिए अतीत की चेतना को विकसित करना आवश्यक है। उसे इस चेतना को आजीवन विकसित करते रहना है। कलाकार की प्रगति सतत आत्मोत्सर्ग है। जो उसके व्यक्तित्व का सतत पलायन या तिरोधान है। The progress of an artist is a continual self-sacrifice, a continuale & tinction of personality. निर्वैयक्तिकता की स्थिति में कला विज्ञान के निकट पहुँच जाती है।

टी. एस. इलियट को सर्वाधिक प्रसिद्ध रचना 'Tradition and Individual Talent' है। इसमें इलियट ने साहित्य की आधारभूत एवं मौलिक समस्याओं को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया है। टी. एस. इलियट, एजरा पाउण्ड के विचारों से प्रभावित थे, जो यह मानते थे कि कवि

को वैज्ञानिक के समान निर्वैयक्तिक या इम्पर्सनल होना चाहिए। उनके अनुसार 'महान रचनाकार निर्वैयक्तिक होता है। कविता भाव की उन्मुक्त अभिव्यक्ति नहीं है, वह भाव से मुक्ति है।' वह व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति नहीं व्यक्तित्व से मुक्ति है। किन्तु निश्चय ही जिनमें व्यक्तित्व और भाव है वे ही यह जान सकते हैं कि उनके मुक्ति की आकाँक्षा का अर्थ क्या होता है। उन्होंने आत्मनिष्ठ साहित्य के स्थान पर वस्तुनिष्ठ साहित्य को विशेष महत्व दिया। वे कला को निर्वैयक्तिक घोषित किया और कवि को काव्य की स्वतंत्र अवतारणा के लिए माध्यम मात्र स्वीकार किया। उन्होंने इस सिद्धांत का प्रतिपादन रोमांटिक कवियों की व्यक्तिवादिता के विरोध में किया। इस सिद्धांत के माध्यम से उन्होंने काव्य-सिद्धांत को वैज्ञानिक बनाने की कोशिश की। उन्होंने कवि के मन की तुलना प्लेटिनम के तार से की है। टी. एस. इलियट ने कहा कि यदि 'आक्सीजन और सल्फर-डायोक्साइड' के कक्ष में प्लेटिनम का एक तार डाल दिया जाय तो आँक्सीजन और सल्फर डायोक्साइड मिलकर सल्फ्यूरस एसिड बन जाते हैं, किन्तु इस सल्फ्यूरस एसिड में प्लेटिनम का कोई चिह्न दिखाई नहीं देता। प्लेटिनम का तार की पूर्णत: अप्रभावित रहता है। इसी प्रकार कवि ने मन के संपर्क में अनेक प्रकार के संवेदन, अनुभूतियाँ और भाव आते हैं और नये-नये रूप ग्रहण करते रहते हैं किन्तु प्रौढ़ कवि का मन अप्रभावित रहता है। अर्थात रचनाकार जितना प्रौढ़ और परिपक्व होगा, उसमें भोक्ता और स्रष्टा व्यक्तित्व का अंतर उतना ही स्पष्ट होगा। स्पष्ट है कि भले ही उनके प्रारंभिक मत शब्दावली से लोगों को यह भ्रम हो गया हो कि वह कविता को कुशल-शिल्प-विधान मानते थे , परंतु बाद में चलकर कला की निर्वैयक्तिकता से इलियट का अभिप्राय मात्र कुशल शिल्पी की निर्वैयक्तिकता से नहीं है। अब तो वह कला की निर्वैयक्तिकता को प्रौढ़ कवि निजी अनुभवों की सामान्य अभिव्यक्ति मानता है, यह सिद्धांत भारतीय आचार्यों के साधारणीकरण से काफी मेल रखता है। इलियट के इस सिद्धांत को निम्न बिन्दुओं द्वारा और स्पष्ट तरीके से समझा जा सकता है-

- इलियट के अनुसार कवि व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति नहीं करता, बल्कि वह विशिष्ट माध्यम मात्र है। व्यक्तिगत भावों की अभिव्यक्ति कला नहीं है। वरन् उससे पलायन कला है।
- इलियट का पहले विचार था कि 'कविता उत्पन्न नहीं की जाती, उत्पन्न हो जाती है।' बाद में इलियट के विचार परिवर्तित हो गये और उन्होंने कहा कि 'मैं उस वक्त अपनी बात ठीक से व्यक्त नहीं कर सका था।'
- इलियट की निर्वैयक्तिकता का अर्थ है- कवि के व्यक्तिगत भावों की विशिष्टता का सामान्यीकरण अर्थात् कवि अपने निजी भाव कविता में अभिव्यक्त करता है और वह भाव इस प्रकार से प्रस्तुत करता है कि वे भाव उसके अपने ही नहीं, जनसाधारण के भाव बन जाते हैं।
- इलियट के अनुसार निर्वैयक्तिकता के दो रूप होते हैं- एक वह जो कुशल शिल्पी मात्र के लिए प्राकृतिक होता है तथा दूसरा वह जो प्रौढ़ कलाकार के द्वारा अधिकाधिक उपलब्ध किया जाता है। दूसरे प्रकार की निर्वैयक्तिकता उस प्रौढ़ कवि की होती है, जो अपने

उत्कृष्ट और व्यक्तिगत अनुभवों के माध्यम से सामान्य सत्य को व्यक्त करने में समर्थ होता है।

- इलियट ने 'कविता के तीन स्वर' नामक अपने भाषण में काव्य के तीन स्वर माने हैं – प्रथम स्वर जिसमें कवि अन्य किसी से नहीं, वरन स्वयं से बात करता है। द्वितीय स्वर वह जिसमें वह अन्य श्रोताओं से बात करता है और तृतीय स्वर में कवि स्वयं वक्ता न होकर पात्रों के माध्यम से बोलता है।
- इलियट ने कहा कि कविता स्वयं अवतरित हो जाती है, लिखी नहीं जाती। ऐसी दशा में कवि केवल माध्यम होता है।
- इलियट के अनुसार जो कविता केवल कवि के लिए होगी, वह कविता नहीं हो सकती।

इलियट के इस सिद्धांत पर यह आक्षेप किया गया कि कविता कवि व्यक्तित्व के निरपेक्ष नहीं हो सकती, कवि के अनुभव कविता में व्याप्त होकर साधारणीकृत बन जाते हैं, परंतु इस आक्षेप के प्रसंग में इलियट का यह कथन लिया जा सकता है कि उसका मूल उद्देश्य रोमांटिक काव्य की अतिशय वैयक्तिकता पर प्रश्नचिन्ह लगाना था, क्योंकि इलियट वैसे तो कवि या कलाकार के व्यक्तित्व का समर्थक था। इसी प्रकार कविता के विषय में इलियट का कथन है कि वह स्वयं अवतरित हो जाती है, लिखी नहीं जाती। ऐसी दशा में कवि तो केवल माध्यम होता है। दूसरे स्वर में कविता किसी सजग सामाजिक उद्देश्य के लिए लिखी जाती है। तीसरे स्वर के अंतर्गत नाटक आते हैं। वास्तविक रूप में किसी भी कविता में केवल एक स्वर मिलना कठिन है।



अपनी प्रगति जांचें

प्रश्न 1. टी. एस. इलियट का साहित्यिक परिचय दीजिए।

कवि से प्रभावित होकर इलियट अनेकता मे एकता बाँधने के लिए परंपरा को आवश्यक मानते थे, जो वैयक्तिकता का विरोधी है। इलियट ने कविता की उत्पत्ति को लेकर बाद में अपने मत में संशोधन करते हुए कहा कि– 'मैं उस समय अपनी बात ठीक से व्यक्त न कर सका था।' कवि एवं कलाकृति दोनों को परस्पर प्रभावित होना स्वीकार करते हैं, 'मैं विश्वास करता हूँ कि कवि अपने पात्रों को अपना कुछ अंश अवश्य प्राप्त करता है, किन्तु मैं यह भी विश्वास करता हूँ कि वह अपने निर्मित पात्रों द्वारा स्वयं भी प्रभावित होता है।' इस प्रकार हम देखते हैं कि इलियट के विचार से महान कला सदैव निर्वैयक्तिक होती है।



8.5 सारांश

इलियट आधुनिक युग के न केवल सर्वश्रेष्ठ कवि हैं, बल्कि आलोचनात्मक वृत्ति के समर्थ व्याख्याता भी है। उनकी कृतियाँ व्यवस्था के प्रयोजन से प्रेरित हैं। इतिहास-बोध और परम्परा की धारणाओं के अन्तर्गत अतीत के समग्र साहित्य को वर्तमान के लिए और दूसरे देशों के साहित्यों को किसी एक देश के लिए सार्थक तथा उपादेय मानना इलियट की प्रमुख देन है। परम्परा की तरह काव्य भी निर्वैयक्तिकता का सिद्धांत उनके लेखन में सर्वत्र व्याप्त हैं। रोमांटिक भावधारा की अतिवैयक्तिकता के फलस्वरूप उन्होंने अपना यह सिद्धांत प्रस्तुत किया है। वस्तुनिष्ठता भी इसका एक पक्ष है। काव्य और आलोचना दोनों में इलियट निर्वैयक्तिकता एवं वस्तुनिष्ठता के समर्थक हैं। वस्तुत: निर्वैयक्तिकता एवं वस्तुनिष्ठता आभिजात्यवादी धारणाएँ हैं जिन्हें ये साहित्य के लिए हितकर समझते हैं। नि:संदेह कवि और आलोचक के रूप में इलियट को जो प्रसिद्धि मिली, वह अन्य किसी को अपने जीवन-काल में नहीं मिली।



8.6 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न 1 का उत्तर : बीसवीं शताब्दी में पाश्चात्य समीक्षा को प्रभावित करने वाले विचारकों में टी. एस. इलियट (टॉमस स्टलर्स इलियट) का नाम अत्यंत महत्वपूर्ण है। वे एक साथ सर्वाधिक प्रभावशाली कवि, नाटककार तथा समीक्षक थे। टी. एस. इलियट का जन्म 26 सितंबर, 1888 को सेंटलुई, मिसौरी (अमेरिका) में हुआ था। उनकी शिक्षा पेरिस और लंदन में हुई।

अधिक जानने के लिए 'सामान्य परिचय' और 'निर्वैयक्तिकता का सिद्धांत' को ध्यानपूर्वक पढ़ें।



8.7 अधिक जानने के लिए पढ़ें

1. श्रीकांत खरे (अनुवादक)- सौन्दर्यशास्त्र के मूल तत्व, राइस संस्थान के व्याख्यानों का हिन्दी अनुवाद, किताब महल, इलाहाबाद 1967।
2. बच्चन सिंह- आलोचक और आलोचना, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
3. करुणाशंकर उपाध्याय- पाश्चात्य काव्य-चिन्तन, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।



8.8 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रश्नों के उत्तर लिखिए :

1. 'पोयट्री एण्ड ड्रामा' किसकी रचना है?
2. इलियट का पूरा नाम क्या है?

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए :

1. टी. एस. इलियट ने कला के बारे में क्या कहा है? स्पष्ट कीजिए।
2. टी. एस. इलियट के निर्वैयक्तिकता सिद्धांत की समीक्षा कीजिए।

*** ***** ***

इकाई 9 : स्वच्छंदतावाद (रोमांटिसिज़्म)

इकाई की रूपरेखा

9.1 उद्देश्य

9.2 प्रस्तावना

9.3 अर्थ, परिभाषा एवं स्वरूप

9.4 विशेषताएँ

- 9.4.1 विद्रोह की प्रवृत्ति
- 9.4.2 कृत्रिमता से मुक्ति
- 9.4.3 कल्पना की प्रधानता
- 9.4.4 जगत से पलायन
- 9.4.5 अद्भुत के प्रति मोह
- 9.4.6 वैयक्तिकता की भावना
- 9.4.7 स्वानुभूति को प्रमुखता
- 9.4.8 सौंदर्य के प्रति मोह
- 9.4.9 प्रकृति प्रियता
- 9.4.10 संगीतात्मकता
- 9.4.11 भाषा और शिल्प

9.5 सारांश

9.6 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

9.7 अधिक जानने के लिए पढ़े

9.8 अभ्यास प्रश्न

9.1 उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के उपरांत आप–

- स्वच्छंदता का अर्थ समझेंगे।
- स्वच्छंदता का स्वरूप से परिचय प्राप्त करेंगे।
- स्वच्छंदता की सामान्य विशेषताओं से अवगत होंगे।
- स्वच्छंदतावाद का साहित्य में प्रभाव को जान पाऐंगे।

9.2 प्रस्तावना

अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम दशक और उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में यूरोप में एक

नवीन साहित्यिक धारा का उन्मेष हुआ, जिसे स्वच्छंदतावाद (Romanticism) कहा गया। यद्यपि स्वच्छंदतावादी प्रवृत्तियाँ प्रत्येक देश और प्रत्येक युग के साहित्य में न्यूनाधिक मात्रा में उपलब्ध रहती हैं तथापि व्यापक साहित्यिक आन्दोलन के रूप में स्वच्छंदतावाद आधुनिक युग की देन है। इस शब्द का प्रथम प्रयोग जर्मनी के प्रसिद्ध आलोचक फ्रेडरिक श्लेगल ने किया और इसे अभिजात्यवाद का विपरीतार्थक माना। इस धारा का 1789 ई. में फ्रांस में होने वाली राज्य-क्रान्ति (French Revolution) से गहरा संबंध है। इस क्रान्ति ने यूरोप की प्राचीन संस्कृति को पूर्णत: बदल डाला, जीवन-मूल्यों में क्रान्तिकारी परिवर्तन कर दिया, जीवन-दृष्टि में युगान्तर स्थापित कर दिया और इन सबका परिणाम साहित्यिक मानदण्डों पर भी पड़ा। जहाँ प्राचीन धर्म, राज्य-व्यवस्था और परम्परागत सामाजिक संस्कार बदले और एक नवीन जीवन-दृष्टि का उन्मेष हुआ, वहाँ दूसरी ओर साहित्य के क्षेत्र में भी प्राचीनता का निर्मोक उतार कर नवीन भाव-पुष्पों से उसका श्रृंगार किया गया। रूसो इस रोमांटिक विचारधारा का प्रतिनिधि था। उसने मानव-स्वतन्त्रता पर बल दिया और कहा- "Man is born free but is found everywhere in chains." उसी ने प्रकृति की ओर वापस लौटो (Back to Nature) का नारा लगाया। स्वातन्त्रय की लालसा, बन्धनों को काट फेंकने का उत्साह और प्रकृति के प्रति अदम्य प्रेम ने साहित्य, को भी प्रभावित किया। आलोचकों की मान्यता है कि वर्ड्सवर्थ और कॉलरिज इन दोनों के प्रसिद्ध कविता-संग्रह 'लिरिकल बैलेड्स' 1798 के प्रकाशन-काल से अंग्रेजी में स्वच्छंदतावाद का आरंभ हुआ।



महत्वपूर्ण बिंदु

- स्वच्छंदतावाद का सबसे पहला प्रयोग जर्मनी के प्रसिद्ध आलोचक फ्रेडरिक श्लेगल ने किया।
- स्वच्छंदतावाद को फ्रेडरिक श्लेगल ने अभिजात्यवाद का विपरीतार्थक माना।

स्वच्छंदतावाद की पृष्ठभूमि में तत्कालीन परिस्थितियों का बहुत बड़ा हाथ है। औद्योगिकीकरण, वैज्ञानिक उन्नति तथा शिक्षा के प्रचार-प्रसार ने जनसाधारण को व्यक्ति-महिमा से मण्डित किया। व्यक्ति अपना महत्व समझने लगा। विज्ञान ने धर्म एवं विश्वास पर आधारित अनेक सिद्धांतों का प्रबल खण्डन किया और नवीन सिद्धांतों की स्थापना की। शिक्षा के व्यापक प्रचार और पुरातन ग्रंथों की शास्त्रीयता ने लोक-जीवन पर आधारित साहित्य की आवश्यकता को जन्म दिया। रूसो आदि विचारक काफी पहले ही मानव-स्वतंत्रता का उद्घोष कर चुके थे। फलत: जनसाधारण निष्प्राण रूढ़ियों एवं निरर्थक सिद्धांतों का परित्याग कर स्वतन्त्र एवं स्वच्छन्द जीवन-यापन के लिए आतुर हो उठा।

9.3 अर्थ परिभाषा एवं स्वरूप

वस्तुत: स्वच्छंदतावाद शब्द अँग्रेजी के रोमांटिसिज्म शब्द का समानार्थी है और पाश्चात्य आलोचनाशास्त्र में इसे महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। पाश्चात्य साहित्य-चिंतन में 'रोमांटिसिज़्म' अथवा 'स्वच्छंदतावाद' को प्राय: 'क्लासिसिज़्म' अथवा 'अभिजात्यवाद' की विरोधी प्रवृत्ति के रूप में देखा जाता है। अभिजात्यवाद में जहाँ साहित्य के लिए वस्तुपरक शास्त्रीय नियमों का अनुशासन आवश्यक माना जाता है, वहाँ स्वच्छंदतावाद आत्मपरकता के साथ रचनाकार की स्वतंत्रता के अधिकार का समर्थन करता है। अंग्रेजी आलोचना में 'रोमांटिसिज़्म' शब्द का प्रयोग 18 वीं सदी के अंत में उभरी एक विशिष्ट प्रवृति के लिए हुआ जो मुख्य रूप से कविता के क्षेत्र में प्रतिफलित हुई किन्तु जिसने साहित्य तथा कला के अन्य क्षेत्रों पर भी गहरा प्रभाव छोड़ा।

'रोमांटिसिज़्म' का सीधा अर्थ 'रोमांस' से जुड़ा है, जिसका प्रयोग भिन्न-भिन्न अर्थों में होता रहा है। 'रोमांस' शब्द सामान्यत: अति-भावुक तथा कल्पना-प्रधान मनोवृत्ति के लिए प्रयुक्त होता है। ऐसी प्रवृत्ति जिसके लिए कुछ भी असंभाव्य नहीं है। यहीं से आरंभ होकर इसका प्रयोग मध्यकाल की प्रेम तथा साहसिकतापूर्ण कथाओं और लोक-गाथाओं के लिए होने लगा। संभव-असंभव स्थितियों से जूझते चरित्रों वाली ये कथाएँ प्रेम और वीरता के अत्यंत ऊँचे आदर्शों पर आधारित होती थीं और इनमें प्राय: रहस्यमय अति-मानवीय तत्वों का समावेश भी होता था। इन्हीं कथाओं को रोमांस कहा जाता था। आगे चलकर इस शब्द का प्रयोग साहित्य की उस प्रवृत्ति के लिए होने लगा जो वस्तुवादी, शास्त्रवादी तथा आदर्शवादी अनुशासन से प्रेरित गद्यात्मक साहित्य के विरुद्ध वस्तु तथा भाषा के स्तर पर भावुकता, चारुत्व और रमणीयता से युक्त साहित्य की वकालत करती थी। अठारहवीं शताब्दी में प्रयोग तथा क्षेत्र, दोनों दृष्टियों से इस शब्द का अर्थ-विस्तार हो गया। फ्रांस में उच्च-वर्गीय अन्याय एवं शोषण के खिलाफ स्वतंन्तता भावना से प्रेरित जो जनांदोलन हुआ था, 'रोमांस' का संबंध उस भावना से भी जोड़ा जाता है। इस अर्थ में वह व्यक्ति या स्थिति-विशेष के स्थान पर पूरी मानवता की स्वतंत्रता-चेतना से जुड़ गया। 'रोमांस' के अनेक अर्थों में भी अनेक सूक्ष्म अर्थच्छाया हैं, जिनके सारे पहलुओं का स्पष्ट रूप से निर्देश नहीं किया जा सका है। इसके अलावा, जिन रचनाकारों और विचारकों ने इस प्रवृत्ति के विकास और निर्वाह में योगदान दिया, उनकी जीवन-शैली और जीवन-दृष्टि में भी काफी अंतर रहा है। इसलिए 'रोमांस' और 'रोमांटिसिज़्म' की सुनिश्चित परिभाषा करना कठिन है। कुछ विद्वानों ने इस कार्य को संभव भी नहीं माना है।

हिन्दी में 'रोमांटिसिज़्म' के लिए 'स्वच्छंदतावाद' का प्रयोग किया जाता है। स्पष्ट है कि इस शब्द से इस सिद्धांत या मनोवृत्ति के एक ही पक्ष का संकेत मिलता है, किन्तु यह शब्द 'रोमांटिसिज़्म' शब्द के संपूर्ण अर्थ के लिए रूढ़ हो गया है। पाश्चात्य सौंदर्यशास्त्र में भी 'रोमांटिसिज़्म' शब्द का प्रयोग तो लंबे समय से होता रहा, किन्तु इसके पारिभाषिक अर्थ का निर्धारण बहुत बाद में हुआ। इस शब्द का पारिभाषिक अर्थ में प्रयोग सबसे पहले फ्रांस में 1669

ई. में हुआ। वहाँ यह शब्द कला-चिंतन के संदर्भ में प्रयोग में आया था। अंग्रेजी में भी यह शब्द सत्रहवीं शताब्दी में ही आ गया था, किन्तु साहित्य के प्रसंग में इसका अर्थ स्पष्ट और सुनिश्चित नहीं था। इसके सटीक अर्थ के बारे में यूरोपीय साहित्य जगत में काफी समय तक वाद-विवाद भी होता रहा। अंततः जर्मनी के श्लेगल ने शास्त्रवाद या 'क्लासिसिज़्म' की विपरीत प्रवृत्ति के रूप में इसका अर्थ निर्धारित किया। इस प्रवृत्ति से जुड़े प्रख्यात कवियों- वर्ड्सवर्थ, कॉलरिज, शेली आदि ने अपने तथा अपने युग के काव्य-सिद्धांतों की चर्चा के दौरान कहीं भी इस शब्द का प्रयोग नहीं किया, न ही वे इसके अर्थ या प्रयोग को लेकर किसी विवाद में पड़े।

स्वच्छंदतावाद की प्रवृत्ति व्यापक नियम, समूह तथा जटिलता से हटकर सरलता एवं सहजता की ओर रही है; इसलिए उसने कवि-व्यक्तित्व को कविता का मूल उत्स स्वीकार किया है। यद्यपि व्यक्तित्व भी जटिल वस्तु है और उसमें भावों एवं विचारों दोनों का समुचित समावेश है, लेकिन स्वच्छंदतावादी भावों को ही विशेष महत्व प्रदान है। भाव की प्रबल स्वीकृति से स्वच्छंदतावादी आन्दोलन को व्यापक जन-समर्थन प्राप्त हुआ तथा आनन्द को काव्य का प्रयोजन माना जाने लगा। भाव को कविता के रूप में कैसे ढाला जाए-इसके उत्तर स्वरूप स्वच्छंदतावादियों ने कल्पना की प्रतिष्ठा की। कल्पना भी कवि की मनःशक्ति ही है। कल्पना का विशद विवेचन किया गया, स्वरूप-विवेचन भी और दार्शनिक विवेचन भी तथा कल्पना शक्ति को ही कृतित्व का सर्वसम्मत आधार माना गया। एबरक्रॉम्बी ने इसी को लक्ष्य करके कहा है- 'स्वच्छंदतावाद बाह्य अनुभूतियों से पलायन है, जिससे आन्तरिक अनुभूतियों में केन्द्रित हुआ जा सके।' स्वच्छंदतावाद व्यक्तिमूलक होते हुए भी सामाजिक स्वीकृति के लिए आतुर रहता है। एक ओर वह कवि-व्यक्तित्व को प्रमुख मानता है। फलतः वह विजयी हुआ और एक साहित्यिकवाद के रूप में न केवल फ्रांस, इंग्लैण्ड और जर्मनी, बल्कि समग्र संसार में समादृत हुआ। स्वच्छंदतावाद के स्वरूप के साथ उसकी सीमाओं पर भी विचार कर लेना चाहिए। कुछ विचारकों को यह शब्द ही उपयुक्त नहीं लगा है। उनके मतानुसार स्वच्छंदतावाद का अर्थ प्रत्येक व्यवस्था, नियम-सिद्धांत, परम्परा और मान्यता का उल्लंघन करना है। स्वच्छंदतावाद निश्चय ही पुरातन रूढ़िवाद जीवनदर्शन के प्रति एक स्वस्थ प्रतिक्रिया थी, जब तक कवियों ने कल्पना के बल पर अनुभूतियों एवं प्रकृति के मनोरम चित्र अंकित किए, वे जनसमर्थन प्राप्त करत रहे और जब उन्होंने शुद्ध काल्पनिक जगत में भ्रमण करना प्रारम्भ कर दिया और काव्य-जगत, यथार्थ जगत् से नितान्त असम्पृक्त हो गए तो जनता ने उनका साथ छोड़ दिया। स्वच्छंदतावाद ने सौन्दर्य और आनन्द को काव्यमूल्य के रूप में स्वीकार किया है। इनमें सौन्दर्य साधन है और आनन्द साध्य।



महत्वपूर्ण बिंदु

- 'स्वच्छंदतावाद' शब्द का पारिभाषिक अर्थ में प्रयोग सबसे पहले फ्रांस में 1669 ई. में हुआ था।
- एबरक्रॉम्बी ने 'स्वच्छंदतावाद' को बाह्य अनुभूतियों से पलायन कहा है।

9.4 विशेषताएँ

सामान्यतया प्रसिद्ध आंग्ल कवि एवं आलोचक विलियम वर्ड्सवर्थ को ही स्वच्छंदतावादी काव्यधारा का प्रवर्तक माना जाता है और स्वच्छंदतावाद के उत्थान का श्रेय इंग्लैंड को ही प्राप्त हुआ। कहा जाता है कि वर्ड्सवर्थ एवं कॉलरिज की युगान्तकारी काव्य कृति लिरिकल बैलेड्स का दूसरा संस्करण जब सन् 1800 में प्रकाशित हुआ, तब इसमें वर्ड्सवर्थ की भूमिका (प्रिफेस) में साहित्यालोचन सम्बन्धी सिद्धांतों की स्थापना की गयी और यही 'प्रिफेस' स्वच्छंदतावाद का पहला महान घोषणा-पत्र माना गया। स्वयं वर्ड्सवर्थ की कविता में स्वच्छंदतावाद की प्राय: सभी विशेषताएँ निखरे हुए रूप में दिख पड़ती हैं और वर्ड्सवर्थ के मित्र तथा सहयोगी कवि कॉलरिज ने भी अठारहवीं शताब्दी की काव्यरूढ़ मान्यताओं का उन्मूलन कर स्वछंदतावाद की प्रतिष्ठा में योगदान दिया। इस सम्बन्ध में कॉलरिज की 'बायोग्राफिया लिटरेरिया' विशेष रूप से उल्लेखनीय है और वर्ड्सवर्थ एवं कॉलरिज के सदृश बायरन, शेली, कीट्स एवं लेह हंट आदि साहित्यकारों ने स्वछंदतावाद के अभ्युदय में अपना महत्वपूर्ण योग दिया है। कहा जाता है कि पाश्चात्य साहित्य जगत में स्वच्छंदतावाद का प्रभाव सन् 1832 तक विद्यमान रहा, पर इस काव्यधारा ने जीवन और काव्य को ऐसे व्यापक मूल प्रदान किये कि उसका प्रभाव किसी न किसी रूप में सन् 1832 के पश्चात भी दिखाई देता है। स्वच्छंदतावाद की प्रवृत्तियों अथवा विशेषताओं की चर्चा मुख्य रूप से वर्डसवर्थ, कॉलरिज, शेली, कीटस, बायरन आदि के काव्य पर आधारित है। किन्तु यह नहीं भूलना चाहिए कि इसी युग में अंग्रेजी गद्य-साहित्य भी तेज़ी से विकसित हुआ था। सर वाल्टर स्कॉट के उपन्यासों, चार्ला लैंब, हैज़लिट, लैंडर आदि के ललित निबंधों तथा अन्य गद्य रचनाओं में भी स्वच्छंदतावादी विचारधारा अपने ढंग से अभिव्यक्त हुई।

'काव्य की मुक्त एवं स्वच्छंद अभिव्यक्ति प्रणाली' साहित्य में 'रोमांटिसिज़्म' समर्थक कवियों ने प्रकृति को प्रमुखता दी और व्यक्ति की महत्ता बढ़ गई। स्वच्छंदतावादी कवि व्यक्तिपरक दृष्टिकोण से काव्य को देखता है तथा उसमें कल्पना की प्रमुखता होती है। स्वच्छंदतावादी काव्यधारा का अनुशीलन करने के पश्चात विचारक उसकी निम्नलिखित प्रमुख विशेषताएँ मानने के पक्ष में हैं-

9.4.1 विद्रोह की प्रवृत्ति

यह प्रवृत्ति विषय, भाषा और शैली सभी क्षेत्रों में है। स्वच्छंदतावादी कवि संवेगों से परिचालित होता है। विद्रोह, स्वच्छंदतावाद का मूल आधार है जिसकी मुख्य प्रेरणा राजनीतिक और सामाजिक अत्याचारी रूढ़ियों के खिलाफ मनुष्य की स्वतंत्रता की माँग करने वाली फ्रांसीसी क्रांति रही है। इस क्रांति के प्रभाव ने उस दौर के रचनाकार को राजनीति, धर्म, समाज और साहित्य की सभी प्रकार की रूढ़ियों से मुक्ति की प्रेरणा दी। साहित्य में यह विद्रोह जड़ता, रूढ़ियों तथा अप्रासंगिक होती हुई लेखन-परांपराओं से लेखक की मुक्ति के प्रयास में दिखाई देता है।

विषय-वस्तु के स्तर पर स्वच्छंदतावादी रचनाकारों ने उदात्त चरित्रों की गाथा गाने के स्थान पर साधारण मानव के सामान्य अनुभवों तथा अपने परिवेश और प्रकृति के सामान्य-सहज रूपों को अंकित किया। इनकी रचनाओं में ग्रामीण जीवन के अनेक नैसर्गिक चित्र-किसान, ग्राम बालाएँ, ग्राम प्रकृति-विषयवस्तु के रूप में स्थान लेती दिखाई पड़ती है। स्वच्छंदतावादी कवियों ने शैली और शिल्प के प्रयोगों में भी इसी विद्रोही प्रवृत्ति का प्रमाण दिया। इन्होंने अपने-अपने तरीकों से नए प्रयोग तो किए ही, साथ ही शैली और शिल्प के बारे में इनमें आपसी मतभेद भी रहे। यह वैविध्य और प्रयोगशीलता व्यक्ति-स्वतंत्रता का ही एक रूप है, जिसकी गुंजाइश अभिजात्यवाद के नियमन अनुशासन में नहीं थी। पुरानी, नपी-तुली, कृत्रिम भाषा (पोएटिक डिक्शन) से भिन्न यह भाषा अपनी विभिन्नता के बावजूद पढ़ने वाले से एक आत्मीय संवाद स्थापित करती है, उसपर अपनी विद्वता तथा गरिमा का रौब नहीं डालती। यह भाषा विषयानुरूप तथा भाव-समृद्ध है।

9.4.2 कृत्रिमता से मुक्ति

कविता को आडम्बर एवं कृत्रिमता से मुक्ति दिलाई। प्रकृति की ओर लौटने तथा सरलता के प्रति-आग्रह ने कवियों को कृत्रिमता तथा आडम्बर से मुक्त होने की प्रेरणा दी। इन्हीं भावों से अनुप्रेरित हो 'Lyrical Ballads' नामक काव्य-संग्रह लिखा गया, जिसमें समान्य व्यक्तियों के सहज और सरल भावों को चित्रित किया गया था। वस्तुत: रोमांटिक कवियों का उद्देश्य ही कृत्रिम, अयथार्थ, लेखन-शैली से मुक्त होना था, उन्होंने शैलीगत सरलता को अपनाया। 1798 ई. में प्रकाशित 'Lyrical Ballads' की भूमिका, जो एक प्रकार से रोमांटिसिज़्म का सिद्धांत-पत्र मैनीफेस्टो (Manifesto) कहा गया है- वर्ड्सवर्थ ने स्पष्ट रूप से लिखा है कि ये कविताएँ इसी बात का पता लगाने के लिये लिखी गई है कि मध्य एवं निम्न वर्ग के लोगों की बात-चीत की भाषा कविता के आनन्द के लिए उपयोगी हो सकती है ज्वे लोग सामाजिक मिथ्याहंकार से

मुक्त होने के कारण अपने भावों और विचारों को सरल एवं अकृत्रिम शब्दों में व्यक्त करते है। सत्य तो यह है कि स्वच्छंदतावादी कवियों का यही कहना था कि व्यक्ति मिथ्या दंभ के कारण अपनी भावनाएँ व्यक्त नहीं कर पाता अत: हमें हर प्रकार के मिथ्याडम्बर से बचकर रहना चाहिए। इसलिए स्वच्छंदतावाद ने कृत्रिमता के अत्याचार से मुक्त होने का आन्दोलन आरम्भ कर कविता में जन-सामान्य की भाषा को अपनाने पर बल दिया और उसे अनावश्यक, कृत्रिमता एवं बाह्य अलंकार से कविता को मुक्त करने में सफलता भी प्राप्त हुई।

9.4.3 कल्पना की प्रधानता

स्वच्छंदतावादी कवि कल्पना के मनोरम ऐन्द्रिय जगत में विचरण करता है और वह काल्पनिक सौंदर्य का उपासक बन जाता है। स्वच्छंदतावाद कविता के लिए संवेग, भावोद्रेक और कल्पना को आवश्यक मानता है। कल्पना को भी स्वच्छंदतावाद में बहुत महत्व दिया गया। इसे काव्य की विधायिनी शक्ति के रूप में देखा गया जो स्थूल बाह्य जगत के अंदर स्थित सूक्ष्म भाव जगत को समझने में रचनाकार की सहायता करती है। कॉलरिज ने तो कल्पना का विस्तार से सैद्धांतिक विवेचन करते हुए सामान्य व्यक्ति की कल्पना से बढ़कर कवि-कल्पना का महत्व स्थापित किया। उन्होंने इसे सृजनकारिणी 'आदि शक्ति' तथा मस्तिष्क की सबसे अधिक प्राणवान क्रिया का दर्जा दे दिया। वे इसे काव्य की ऐसी संश्लेषणात्मक अलौकिक शक्ति मानते हैं जो कवि के संपूर्ण सृजन-व्यापार को क्रियान्वित करती है। कल्पना की नवनवोन्मेषशालिनी क्षमता के बल पर कवि सामान्य तथा स्थूल वस्तु-जगत के साक्षात्कार से भी एक अतींद्रिय, अमूर्त रहस्यमय लोक में या किसी नैतिक और दार्शनिक सत्य तक पहुँच जाता है और दूसरी ओर भावों तथा विचारों को मूर्त रूप प्रदान करने में कल्पना का महत्वपूर्ण योगदान होता है। कल्पना लगभग सृजन-प्रक्रिया का पर्याय है। सी. एम. बावरा ने स्वच्छंदतावादी रचनाकारों में स्वच्छंद कल्पना के अभाव में कविता को ही असंभव माना है। शेली ने कविता को कल्पना की ही अभिव्यक्ति कहा और प्रथम रोमांटिक कवि विलियम ब्लेक ने इसे दैवी शक्ति स्वीकार किया। कल्पना ने रोमांटिक रचनाओं में भाषा और भाव के सौंदर्य का आधार तो किया ही कहीं-कहीं यह जीवन-जगत के दुखों से हारे मन का पलायन भी बनी।

9.4.4 जगत से पलायन

स्वच्छंदतावाद का कवि संसार की संकीर्णताओं से ऊपर उठकर स्वप्नलोक में विचरण करता है। भाव-प्रवणता भी स्वच्छंदतावादी साहित्य की एक प्रमुख विशेषता

है। वर्ड्सवर्थ ने तो कविता की परिभाषा ही 'प्रबल मनोवेगों के सहज उच्छलन' के रूप में की थी। किन्तु यह उच्छलन अनुशासनहीन भावातिरेक, भावों की अभिव्यक्ति या अतिव्यक्ति नहीं था। इसके पीछे सूक्ष्म संवेदनशीलता का आग्रह था, जो कल्पना से युक्त होकर रचनाकार की आंतरिक अनुभूति को ईमानदारी से उद्घाटित करती थी। वर्ड्सवर्थ ने 'मानव और प्रकृति की प्रतिच्छवि' कहकर उसकी जीवन-निर्भरता का संकेत भी किया।

9.4.5 अद्भुत के प्रति मोह

इस प्रवृति ने रहस्यवाद को जन्म दिया है। स्वच्छंदतावादी के लिए जगत आध्यात्मिक शक्ति से परिपूर्ण है। मध्य-युगीन रोमानीय के प्रति स्वच्छंदतावादियों की रूचि अद्भुत के प्रति उनके आकर्षण से भी पुष्ट हुई। वाल्टर पेटर ने स्वच्छंदतावाद की एक विशेषता यह मानी है कि यह सौंदर्य में अद्भुत तत्व जोड़ता है। (addition of strangeness to beauty) थियोडोर वाटस-डनटन ने इसे अद्भुत का पुनर्जागरण (रेनेसां ऑफ वंडर) कहा है। अद्भुत के प्रति यह आकर्षण कई रूपों में व्यक्त हुआ है। अपने तीव्रतम रूप में यह प्रवृत्ति अति-मानवी या अलौकिक तत्वों की चर्चा में दिखाई पड़ती है -विशेषकर कॉलरिज और स्कॉट की रचनाओं में। अन्य रचनाकारों में यह कौतुहल, विस्मय तथा रहस्य के भाव में व्यक्त हुआ। दूसरी ओर वे जाने पहचाने जीवन-संदर्भों तथा वस्तुओं को नई दृष्टि से देखना आरंभ कर देते हैं। जगत के व्यक्त सौंदर्य में वे अव्यक्त सौंदर्य या अदृश्य सत्ता के दर्शन करने लगते हैं। जिसकी चरम परिणति रहस्य-भावना में होती है।

9.4.6 वैयक्तिकता की भावना

व्यक्तिवाद को प्रमुखता देने के कारण कवि अपनी रुचि, अपनी भावना और अपनी दृष्टि को ही प्रधानता देता है। स्वच्छंदतावाद की विशिष्टता वैयक्तिकता-बोध है। व्यक्तिवाद विषयों को नई दृष्टि से देखने का अलग चरण था- बाह्य अनुभव से आंतरिक अनुभूति की ओर यात्रा। इस प्रवृत्ति और भाव-प्रवणता के प्रभाव से स्वच्छंदतावादी साहित्य ने स्वाभाविक रूप से वैयक्तिकता और आत्मपरकता को एक मूल्य के रूप में स्वीकार किया। इस युग के साहित्यकारों की रचानाओं में आभिजात्यवादी निर्वैयक्तिकता के स्थान पर रचनाकार की अपनी दृष्टि और अपनी अनुभूति सहज तथा आत्मीय रूप में व्यक्त हुई। रचनाकारों के अपने सुख-दुख, नैराश्य, वेदना, उल्लास कविता और निबंधों का भाव भी मिलता है। यह भाव समाज तथा स्थितियों से संघर्ष के क्रम में संवेदनशील भाव-प्रवण व्यक्ति-मन की सहज प्रतिक्रिया है।

9.4.7 स्वानुभूति को प्रमुखता

कवियों ने अपनी दुखानुभूतियों, कुण्ठा, निराशा, हताशा, अतृप्त आकांक्षा को काव्य में अभिव्यक्त करते हुए स्वानुभूति को प्रधानता दी। स्वच्छंदतावादी रचनाकारों में मध्ययुगीन रोमांसों तथा रूढ़ियों के प्रति जबर्दस्त आकर्षण मिलता है। इसका प्रमुख कारण है- अपने वर्तमान की वास्तविकताओं से टकराहट, तर्क और बौद्धिक शुष्कता से ऊब, और रूढ़ होती काव्य-शैलियों से मुक्ति की छटपटाहट। निकट वर्तमान से असंतुष्ट व्यक्ति की सहज प्रवृत्ति यह होती है कि या तो वह अतीत गौरव को फिर से सजीव, साकार करने का प्रयत्न करता है या भविष्य के लिए स्वप्न-निर्माण करता है।

9.4.8 सौंदर्य के प्रति मोह

कल्पना की प्रधानता के कारण सौंदर्य चित्रण की प्रमुखता इस काव्य में है। स्वच्छंदतावाद ने गुरु-गंभीरता के स्थान पर सौंदर्य को अधिक महत्व दिया। कीट्स ने सत्य तथा सुंदर को अभिन्न मानते हुए कहा कि सौंदर्य ही सत्य है। सौंदर्य इन कवियों के लिए केवल विषय नहीं है, उनका सौंदर्य-दर्शन और सौंदर्य की नई-दृष्टि अपने पूर्ववर्तियों और परवर्तियों से अलग है। यह नई सौंदर्य-दृष्टि बाह्य जगत तथा प्रकृति में तो सौंदर्य का अन्वेषण करती ही है, कविता में भी बाह्य तथा आंतरिक सौंदर्य की आवश्यकता पर बल देती है। इस सौंदर्य-प्रेम तथा सौंदर्य-जिज्ञासा को पेंटर ने स्वच्छंदतावादी चेतना का मूल तत्व माना था। इन कवियों की दृष्टि सर्वत्र प्रेम और सौंदर्य की ओर जाती है। वह चाहे रूप-रंग का सौंदर्य हो या मन, वचन और कर्म का सौंदर्य। मानव-सौंदर्य को तो उन्होंने खुली आँखों से देखा ही, किन्तु उनका सौंदर्य-प्रेम प्रकृति के उन्मुक्त सौंदर्य के संसर्ग से उद्भुत हुआ है। शेली संपूर्ण प्रकृति को सौंदर्यमयी पाते हैं।

9.4.9 प्रकृति प्रियता

स्वच्छंदतावादी कवियों का प्रकृति के प्रति मोह है। प्रकृति उनके सुख-दुःख से प्रभावित होती दिखाई गई है। स्वच्छंदतावादी प्रकृति में असीम सत्ता के दर्शन करता है, मानव-मन पर उसके गहरे प्रभाव को स्वीकार करता है, उसे कल्पना तथा अनुभूति का उद्रेक करने वाला स्रोत कहता है। रूसो ने मानव को प्रकृति की ओर प्रत्यावर्तन के लिए पुकारा था। स्वच्छंदतावादी रचनाकार प्रकृति की ओर एकाधिक रूपों में लौटे। सबसे पहले तो यह वापसी बनावटी सौंदर्य के तिरस्कार और सहज प्राकृतिक रूपों के प्रति आकर्षण में दिखाई दी। औद्योगिक सभ्यता की विकृतियों और घुटन से व्याकुल इन संवेदनशील साहित्यकारों के लिए प्रकृति एक शरणस्थली थी। प्रकृति के साथ इन

रचनाकारों का संबंध तब रहस्यानुभूति की सीमा का स्पर्श करने लगता है, जब वे इसके माध्यम से अपने अंतर्जगत की पहचान करते हैं या चरम सत्ता का साक्षात्कार करते हैं। प्रकृति को वे स्वत: पूर्ण समझते हुए उसे जीवंत सत्ता तथा ईश्वरीय ज्योति से प्रभासित मानते हैं। प्रकृति इन्हें नैतिकता और आध्यात्मिकता का पाठ पढ़ाती है और सत्य का साक्षात्कार कराती है।

9.4.10 संगीतात्मकता

गीति शैली को इन्होंने प्रमुखता प्रदान की है। ये अपने हृदयोद्गारों को गीत के माध्यम से सहज रूप में अभिव्यक्त करते दिखाई पड़ते हैं। भाषा और ध्वनि के संगीत का सुंदर उपयोग हुआ है।

9.4.11 भाषा और शिल्प

निसर्ग के प्रति झुकाव स्वच्छंदतावाद के भाषा-शैली संबंधी सिद्धांतों में भी अभिव्यक्त होता है। हालांकि इस दौर के रचनाकारों में भाव, भाषा तथा शिल्प की अपार विविधता दिखाई पड़ती है, किन्तु एक बिंदु पर ये सभी सहमत थे। वे सभी सायास शिल्प और बाह्य अलंकरण के विरोधी थे। वे मानव के नैसर्गिक मूल भावों का चित्रण सहज तथा आडम्बरहीन भाषा-शैली में करने के पक्षधर थे। वर्ड्सवर्थ ने तो बोलचाल की आम भाषा को ही काव्य-भाषा के रूप में स्वीकार करने का आग्रह किया। सपाट गद्यात्मक कथन के स्थान पर वे सूक्ष्म व्यंजना और सांकेतिकता के महत्व पर बल देते हैं, जिससे काव्य में रहस्यात्मक सौंदर्य और दार्शनिकता के साथ-साथ अभिव्यंजना शक्ति भी बढ़ जाती है। छंद प्रयोग में भी इस युग के कवि का स्वतंन्तता भाव स्पष्ट है। भाषा और छंद की नवीनता के साथ स्वभावत: इन कवियों का बिंब विधान भी अपनी मौलिकता तथा ताज़गी के कारण आकर्षित करता है। उन्होंने अपने बिंबों का चयन प्रकृति से तो किया ही, इसके अतिरिक्त जनमानस में संचित लोक -गाथाओं के बिंबों को भी कविता में उतारा। सारांश में इनकी कविता अपनी बिंब-धर्मिता के कारण ही नहीं बिंबों की विविधता और मौलिकता के कारण अपनी अलग पहचान रखती है।

फ्रेड्रिक श्लेगल ने इसे 'रोमांटिसिज़्म' नाम दिया, जबकि विक्टर ह्यूगो की दृष्टि में रोमांटिसिज़्म का अभिप्राय 'साहित्यिक उदारवादिता' है। अंग्रेजी भाषा के कवि वर्ड्सवर्थ, कॉलरिज, कीट्स और शेली तथा हिन्दी भाषा के छायावादी कवि प्रसाद, पन्त, निराला और महादेवी वर्मा की कविताओं में स्वच्छंदतावाद की विशेषताएँ देखी जा सकती हैं।



अपनी प्रगति जांचें

प्रश्न 1. स्वच्छंदतावाद में कल्पना का क्या महत्व है? स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न 2. टिपण्णी लिखिए- वैयक्तिकता और स्वच्छंदतावाद।



9.5 सारांश

प्रस्तुत पाठ में आपने पढ़ा कि स्वच्छंदतावाद एक ऐसी प्रवृत्ति है, जिसकी चर्चा साहित्यशास्त्र में युगों से होती चली आ रही है। यह साहित्य की महत्वपूर्ण प्रवृत्ति है। स्वच्छंदतावाद अठारहवीं-उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान लगभग संपूर्ण यूरोपीय कला-जगत, विशेष रूप से साहित्य में व्याप्त ऐसा आंदोलन है, जिसका उदय नव्य-शास्त्रवाद की निर्जीव और रूढ़ होती कला-पद्धतियों की प्रतिक्रिया में हुआ। स्वभावत: इसमें वैयक्तिक प्रतिभा और कल्पना से प्रेरित मौलिक रचनात्मकता और नए प्रयोगों पर विशेष बल दिया गया। साहित्य और कलाओं के प्रति इस दृष्टिकोण को प्रेरित करने वाली महत्वपूर्ण राजनीतिक घटना फ्रांस की जन-क्रांति थी। स्वच्छंदतावाद किसी एक बँधे-बँधाए ढाँचे को नहीं, नाना रूपों में प्रकट हुआ। फ्रांस, जर्मनी और इंग्लैंड में इसके तीन अलग-अलग रूप दिखाई पड़ते हैं, जिनकी विविधता में भी समानताएँ हैं। इस इतिहास के दो छोरों पर भले ही कवि हों, परंतु इस प्रवृत्ति का प्रभाव कविता के अलावा निबंधों और उपन्यासों पर भी दिखाई पड़ता है, साथ ही समीक्षा पर भी। विविधता के बीच स्वच्छंदतावाद की समान विशेषताएँ ही उसकी पहचान निर्धारित करती है। इन विशेषताओं में मुख्य हैं- वैयक्तिकता, अनुभूति-प्रवणता, अद्भुत के प्रति आकर्षण, कल्पना की प्रधानता, अतीतोन्मुखता, सौंदर्याभिमुखता, प्रकृति-प्रेम और अभिव्यंजना शिल्प की प्रयोगधर्मिता आदि। हिन्दी में भक्ति काव्य, रीतिकाल में रीतिसिद्ध काव्य और आधुनिक युग में छायावाद को क्रमश: स्वच्छंदतावाद के रूप में देखा जा सकता है।



9.6 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न 1 का उत्तर : स्वच्छंदतावाद कविता के लिए संवेग, भावोद्रेक और कल्पना को आवश्यक मानता है। कल्पना को भी स्वच्छंदतावाद में बहुत महत्व दिया गया। इसे काव्य की विधायिनी शक्ति के रूप में देखा गया जो स्थूल बाह्य जगत के अंदर स्थित सूक्ष्म भाव जगत को समझने में रचनाकार की सहायता करती है।

अधिक जानने के लिए देखे 'कल्पना की प्रधानता'।

प्रश्न 2 का उत्तर : स्वच्छंदतावाद की विशिष्टता वैयक्तिकता-बोध है। व्यक्तिवाद विषयों को नई दृष्टि से देखने का अलग चरण था-बाह्य अनुभव से आंतरिक अनुभूति की ओर यात्रा। अधिक जानने के लिए पढ़ें 'वैयक्तिकता की भावना'।



9.7 अधिक जानने के लिए पढ़े

1. श्रीकांत खरे (अनुवादक)- सौन्दर्यशास्त्र के मूल तत्व, राइस संस्थान के व्याख्यानों का हिन्दी अनुवाद, किताब महल, इलाहाबाद 1967।
2. बच्चन सिंह- आलोचक और आलोचना, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
3. करुणाशंकर उपाध्याय- पाश्चात्य काव्य-चिन्तन, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।



9.8 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रश्नों के उत्तर लिखिए :

1. स्वच्छंदतावादी काव्यधारा के प्रवर्तक किसे माना जाता है?
2. दो स्वच्छंदतावादी कवियों का नाम उल्लेख कीजिए।

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए :

1. रोमांटिसिज़्म से क्या अभिप्राय है?
2. स्वच्छंदतावाद की परिभाषा एवं स्वरूप पर प्रकाश डालिए।
3. स्वच्छंदतावाद की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

*** ***** ***

इकाई 10 : मार्क्सवाद

इकाई की रूपरेखा

10.1 उद्देश्य
10.2 प्रस्तावना
10.3 कार्ल मार्क्स सामान्य परिचय
10.4 मार्क्सवाद और वर्ग संघर्ष की धारणा
10.5 मार्क्सवाद की अवधारणा
10.6 मार्क्सवाद और फ्रैंकफर्ट स्कूल
10.7 मार्क्सवादी सिद्धांत
10.8 सारांश
10.9 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)
10.10 अधिक जानने के लिए पढ़े
10.11 अभ्यास प्रश्न

10.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप-

- मार्क्सवाद का अर्थ और स्वरूप के सन्दर्भ में जानेंगे।
- मार्क्सवाद के प्रमुख सिद्धान्त तथा इसकी मुलभुत बातों से अवगत होंगे।
- प्रमुख मार्क्सवादी-चिन्तकों की रचना-दृष्टि की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

10.2 प्रस्तावना

मार्क्सवाद एक सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक दर्शन है जो श्रमिकों पर शासक वर्ग के प्रभाव का विश्लेषण करता है। यह श्रमिकों पर हो रहे अन्याय का विरोध करने के लिए प्रेरित करता है। कार्ल मार्क्स के साम्यवादी विचारधारा ही मार्क्सवादी विचारधारा के रूप में जानी जाती है। इस सिद्धांत पर आलोचना करने से पहले कार्ल मार्क्स के बारे में थोड़ा जान लेते हैं।

10.3 कार्ल मार्क्स सामान्य परिचय

कार्ल हेनरिख मार्क्स का जन्म जर्मन में 5 मई, 1818 को हुए थे। वे दार्शनिक, अर्थशास्त्री, इतिहासकार, राजनीतिक, सिद्धांतकार, समाजशास्त्री, पत्रकार, राजनीतिक, अर्थव्यवस्था के आलोचक, समाजवादी क्रांतिकारी और वैज्ञानिक समाजवाद के प्रणेता थे। उनके सबसे प्रसिद्ध रचना 1848 के पैम्फलेट 'द कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो' और चार-खंड में 'दास कैपिटल'

(1867–1883) है। मार्क्स के राजनीतिक और दार्शनिक विचारों का बाद के बौद्धिक, आर्थिक और राजनीतिक इतिहास पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा। उनका नाम एक विशेषण, एक संज्ञा और सामाजिक सिद्धांत के स्कूल के रूप में इस्तेमाल किया गया है।

समाज, अर्थशास्त्र और राजनीति के बारे में मार्क्स के आलोचनात्मक सिद्धांत, जिन्हें सामूहिक रूप से मार्क्सवाद के रूप में समझा जाता है, मानते हैं कि मानव समाज वर्ग संघर्ष के माध्यम से विकसित होते हैं। उत्पादन के पूंजीवादी, शासकों के वर्ग के नियंत्रण से श्रमिकों, सर्वहारा वर्ग को मुक्त करना है, उन्हें संघर्षों के लिए प्रेरित करना है। मार्क्स के लिए, पूँजीवाद के तहत वर्ग विरोध इसकी अस्थिरता और संकट –प्रवण प्रकृति के कारण श्रमिक वर्ग की वर्ग चेतना के विकास को आगे बढ़ाएगा, जिससे उनकी राजनीतिक सत्ता पर विजय होगी और अंतत: एक वर्गहीन उत्पादकों के मुक्त साम्यवादी समाज की स्थापना होगी। मार्क्स ने सक्रिय रूप से इसके कार्यान्वयन के लिए दबाव डाला, यह तर्क देते हुए कि मजदूर वर्ग को पूंजीवाद को खत्म करने और सामाजिक–आर्थिक मुक्ति लाने के लिए संगठित सर्वहारा क्रांतिकारी कार्रवाई करनी चाहिए।

मार्क्स को मानव इतिहास में सबसे प्रभावशाली व्यक्तियों में से एक के रूप में वर्णित किया गया है और उनके काम की प्रशंसा और आलोचना दोनों की गई है। अर्थशास्त्र में उनके काम ने श्रम और पूंजी के संबंध के बारे में कुछ मौजूदा सिद्धांतों के लिए आधार तैयार किया। दुनिया भर में कई बुद्धिजीवियों, श्रमिक संघों, कलाकारों और राजनीतिक दलों मार्क्स के काम से प्रभावित हुए हैं, जो अक्सर उनके विचारों को संशोधित या अनुकूलित करते हैं। मार्क्स को आमतौर पर आधुनिक सामाजिक विज्ञान के प्रमुख वास्तुकारों में से एक के रूप में उद्धृत किया जाता है।



महत्वपूर्ण बिंदु

- कार्ल मार्क्स की दो महत्वपूर्ण रचनाएँ– 'द कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो' और चार–खंड में 'दास कैपिटल'।

10.4 मार्क्सवाद और वर्ग संघर्ष की धारणा

मार्क्सवादी साहित्यिक दृष्टि को समझने के लिए उनकी वर्ग–संघर्ष की धारणा को समझना भी जरूरी है। मार्क्सवाद का बुनियादी लक्ष्य ऐसे वर्ग विहीन समाज की स्थापना है, जो उत्पादन के साधनों के सामाजिक स्वामित्व और नियन्त्रण पर आधारित हो। आर्थिक निर्धारणवाद, द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद और वर्ग–संघर्ष – ये तीन प्रमुख सिद्धान्त हैं, जो मार्क्स की मान्यताओं को समझने के लिए आवश्यक हैं। उनके अनुसार समाज में केवल दो वर्ग हैं– बुर्जुआ (प्रभुत्वशाली

वर्ग, जो उत्पादन साधनों का स्वामी और नियन्ता होता है) एवं सर्वहारा (मजदूर वर्ग, जिसका उत्पादन साधनों पर कोई नियन्त्रण और स्वामित्व नहीं होता) एवं इनके बीच पनपने वाले विरोध के सम्बन्ध से ही अन्ततः वर्ग चेतना का निर्माण होता है। मार्क्स का मानना था कि पिछला सारा इतिहास ऐसे ही दो विरोधी और प्रतिस्पर्द्धी आर्थिक वर्गों के संघर्ष से होने वाले परिवर्तन की अवस्थाओं द्वारा निर्मित है। मार्क्स और एंगेल्स ने मिलकर पूँजीवाद, वर्ग-संघर्ष और समाजवादी आन्दोलनों का विश्ले षण करते हुए विपुल लेखन किया जिसने विश्व इतिहास की धारा को बदल दिया। मार्क्स का स्पष्ट मानना था कि अब तक चिन्तकों ने दुनिया को अलग-अलग तरीके से व्याख्यायित किया है, मगर असली मुद्दा तो उसको बदलने का है। इसलिए मार्क्स कहते हैं कि मूल संघर्ष अच्छाई और बुराई का नहीं है। सत्य और असत्य का भी नहीं है। मूल संघर्ष वर्ग-संघर्ष का है। आर्थिक हितों का संघर्ष है।

10.5 मार्क्सवाद की अवधारणा

वर्ग-संघर्ष, राजनीति और अर्थशास्त्र से मार्क्सवादी दृष्टि का निर्माण हुआ है। मनुष्यों की चेतना उनके अस्तित्व को निर्धारित नहीं करती, बल्कि इसके उलट वह सामाजिक अस्तित्व ही है, जो मनुष्य की चेतना को निर्धारित करता है। अर्थात लेखक की सामाजिक स्थिति ही उसकी रचना में राजनीतिक विचारों, आर्थिक कथनों एवं पात्रों, चरित्रों के विकास को तय करती है। मार्क्सवादी समीक्षकों ने साहित्य के विश्लेषण के लिए आधार और अधिरचना तथा साहित्य के वर्गीय स्वरूप को अपने विचारों का प्रस्थान बिन्दु स्वीकार किया है। इसके साथ ही वे साहित्य के उद्देश्य पर भी चर्चा करते हैं। उनके अनुसार साहित्य का उद्देश्य समाज की संगति में होता है और होना चाहिए। समाज के लिए इनका उद्देश्य वर्ग-संघर्ष में सक्रिय भाग लेकर वर्गहीन समाज की स्थापना करना है। जिसे मार्क्सवाद की शब्दावली में समाजवाद की स्थापना कहा जाता है। मार्क्सवादी आलोचना का उद्देश्य है कि साहित्य को भी इस वर्ग-संघर्ष में हिस्सा लेना चाहिए तथा वर्गहीन समाज की स्थापना का प्रयास करना चाहिए। इसलिए जो साहित्य इस संघर्ष में हिस्सा लेता है वह श्रेष्ठ है, वरेण्य है, क्रान्तिकारी है और प्रगतिशील है। जो साहित्य इस संघर्ष में तटस्थ रहता है या संघर्ष को कमजोर करता है या सर्वहारा का मनोबल गिराने वाला होता है, वह त्याज्य होता है, प्रतिक्रियावादी होता है। मार्क्सवादी आलोचना ऐसे रचनाकारों की आलोचना करती है, भले ही उसमें कितनी भी कलात्मकता और साहित्यिकता हो।

10.6 मार्क्सवाद और फ्रैंकफर्ट स्कूल

पाश्चात्य देशों में मार्क्सवादी साहित्यिक दृष्टि का विकास करने में 'फ्रैंकफर्ट स्कूल' का महत्वपूर्ण योगदान है। इस स्कूल के अध्येता नव-मार्क्सवादी अन्तरानुशासनात्मक दृष्टि के प्रणेता थे और फ्रैंकफर्ट विश्वविद्यालय के सामाजिक शोध संस्थान से सम्बद्ध थे। ये विचारक मार्क्स

की शिक्षाओं की संकीर्ण व्याख्याओं से क्षुब्ध थे। इनका स्पष्ट मानना था की संकीर्ण मार्क्सवादी शिक्षाएँ बदलते सन्दर्भों में पूँजीवाद के उथल-पुथल से भरे विकास और उसके भयानक संकटों को समझने में सक्षम नहीं हैं। ये विचारक पूँजीवादी व्यवस्था और सोवियत समाजवाद दोनों के घोर आलोचक थे। दोनों को नकार कर इन विचारकों ने मार्क्सवाद पर आधारित नई और संकीर्णताओं से मुक्त साहित्य-दृष्टि का निर्माण किया। इन विचारकों में थियोडोर अडोर्नो, मैक्स होर्खाईमर, हर्बर्ट मार्क्यूज, युर्गेन हेबरमास आदि महत्वपूर्ण हैं। इन विचारकों के समीक्षात्मक तेवर एक-दूसरे से काफी भिन्न हैं, फिर भी इनके चिन्तन में बहुत कुछ है जो समान है। इन आलोचकों ने आधुनिकतावाद, मनोविश्लेषणवाद, अस्तित्ववाद और उस समय प्रचलित गैर-मार्क्सवादी दृष्टियों से सफल संवाद स्थापित कर मार्क्सवादी साहित्य-दृष्टि को अधिक व्यापक और प्रासंगिक बनाया। इन विचारकों ने अपनी जान पर खेलकर जर्मनी में नाज़ी शासन को खुल कर चुनौती दी।

10.7 मार्क्सवादी सिद्धांत

मार्क्सवाद मार्क्स के विचारों और शिक्षाओं की प्रणाली है। मार्क्स वह प्रतिभाशाली व्यक्ति थे, जिन्होंने 19वीं शताब्दी की तीन मुख्य वैचारिक धाराओं को जारी रखा और उन्हें पूर्ण किया, जैसा कि मानव जाति के तीन सबसे उन्नत देशों द्वारा दर्शाया गया था। शास्त्रीय जर्मन दर्शन, शास्त्रीय अंग्रेजी राजनीतिक अर्थव्यवस्था और फ्रांसीसी समाजवाद, सामान्य रूप से फ्रांसीसी क्रांतिकारी सिद्धांतों के साथ संयुक्त उनके विरोधियों द्वारा भी स्वीकार की गई, मार्क्स के विचारों की उल्लेखनीय स्थिरता और अखंडता, जिनकी समग्रता आधुनिक भौतिकवाद और आधुनिक वैज्ञानिक समाजवाद का गठन करती है।

इतिहास की भौतिकवादी अवधारणा -

पुराने भौतिकवाद की असंगति, अपूर्णता और एकतरफापन के अहसास ने मार्क्स को 'समाज के विज्ञान को... भौतिकवादी बुनियाद के साथ सामंजस्य में लाने और उसके आधार पर उसका पुनर्निर्माण करने' की आवश्यकता के प्रति आश्वस्त किया। चूँकि भौतिकवाद सामान्य रूप से चेतना को अस्तित्व के परिणाम के रूप में समझाता है, न कि इसके विपरीत, तो मानव जाति के सामाजिक जीवन पर लागू भौतिकवाद को सामाजिक चेतना को सामाजिक अस्तित्व के परिणाम के रूप में समझाना होगा। मार्क्स लिखते हैं, 'तकनीक प्रकृति के साथ व्यवहार करने के मनुष्य के तरीके को प्रकट करती है, उत्पादन की वह तात्कालिक प्रक्रिया जिसके द्वारा वह अपना जीवन बनाए रखता है और इस प्रकार उसके सामाजिक संबंधों और उनसे निकलने वाली मानसिक अवधारणाओं के निर्माण के तरीके को भी उजागर करती है।' राजनीतिक अर्थव्यवस्था की आलोचना में अपने योगदान की प्रस्तावना में, मार्क्स मानव समाज और उसके इतिहास पर लागू भौतिकवाद के मूलभूत सिद्धांतों का एक अभिन्न सूत्रीकरण निम्नलिखित शब्दों में करते हैं-

'अपने जीवन के सामाजिक उत्पादन में मनुष्य ऐसे निश्चित संबंधों में प्रवेश करते हैं जो अपरिहार्य हैं और उनकी इच्छा से स्वतंत्र हैं, उत्पादन के संबंध जो उनकी भौतिक उत्पादक शक्तियों के विकास के एक निश्चित चरण के अनुरूप हैं।'

'उत्पादन के इन संबंधों का योग समाज की आर्थिक संरचना, वास्तविक आधारशिला का निर्माण करता है, जिस पर एक कानूनी और राजनीतिक अधिरचना उभरती है और जिसके अनुरूप सामाजिक चेतना के निश्चित रूप होते हैं। भौतिक जीवन की उत्पादन पद्धति सामान्य रूप से सामाजिक, राजनीतिक और बौद्धिक जीवन प्रक्रिया को निर्धारित करती है। यह मनुष्य की चेतना नहीं है जो उनके अस्तित्व को निर्धारित करती है, बल्कि इसके विपरीत, उनका सामाजिक अस्तित्व उनकी चेतना को निर्धारित करता है। अपने विकास के एक निश्चित चरण में, समाज की भौतिक उत्पादक शक्तियाँ उत्पादन के मौजूदा संबंधों के साथ या जो कि एक ही चीज़ के लिए एक कानूनी अभिव्यक्ति है – उन संपत्ति संबंधों के साथ संघर्ष में आती हैं जिनके भीतर वे अब तक काम कर रहे थे। उत्पादक शक्तियों के विकास के रूपों से ये संबंध उनके बंधनों में बदल जाते हैं। फिर सामाजिक क्रांति का युग शुरू होता है। आर्थिक आधार के परिवर्तन के साथ संपूर्ण विशाल अधिरचना कमोबेश तेजी से रूपांतरित हो जाती है। ऐसे परिवर्तनों पर विचार करते समय, उत्पादन की आर्थिक स्थितियों के भौतिक परिवर्तन, जिसे प्राकृतिक विज्ञान की सटीकता से निर्धारित किया जा सकता है और कानूनी, राजनीतिक, धार्मिक, सौंदर्यबोध संबंधी या दार्शनिक– संक्षेप में, वैचारिक रूपों के बीच हमेशा अंतर किया जाना चाहिए, जिसमें मनुष्य इस संघर्ष के प्रति सचेत हो जाते हैं और उससे लड़ते हैं।

'जिस तरह किसी व्यक्ति के बारे में हमारी राय इस बात पर आधारित नहीं होती कि वह अपने बारे में क्या सोचता है, उसी तरह हम परिवर्तन के ऐसे दौर का अंदाजा उसकी अपनी चेतना से नहीं लगा सकते; इसके विपरीत, इस चेतना को भौतिक जीवन के अंतर्विरोधों से, सामाजिक उत्पादक शक्तियों और उत्पादन संबंधों के बीच मौजूदा संघर्ष से समझाया जाना चाहिए.... व्यापक रूप से, एशियाई, प्राचीन, सामंती और आधुनिक बुर्जुआ उत्पादन के तरीकों को समाज के आर्थिक गठन में प्रगतिशील युगों के रूप में नामित किया जा सकता है।'

इतिहास की भौतिकवादी अवधारणा की खोज या अधिक सही ढंग से कहें तो सामाजिक घटनाओं के क्षेत्र में भौतिकवाद की निरंतरता और विस्तार ने पहले के ऐतिहासिक सिद्धांतों की दो मुख्य कमियों को दूर कर दिया। सबसे पहले, उत्तरार्द्ध ने सबसे अच्छे रूप में केवल मानव की ऐतिहासिक गतिविधियों में वैचारिक उद्देश्यों की जांच की, उन उद्देश्यों की उत्पत्ति की जांच किए बिना या सामाजिक संबंधों की प्रणाली के विकास को नियंत्रित करने वाले वस्तुगत नियमों का पता लगाए बिना या भौतिक उत्पादन द्वारा प्राप्त विकास की डिग्री में इन संबंधों की जड़ों को देखे बिना; दूसरे स्थान पर, पहले के सिद्धांतों ने जनसंख्या के जनसमूह की गतिविधियों को शामिल नहीं किया, जबकि ऐतिहासिक भौतिकवाद ने पहली बार वैज्ञानिक सटीकता के साथ जनसमूह के जीवन की सामाजिक स्थितियों और उन स्थितियों में परिवर्तनों का अध्ययन करना

संभव बनाया। मार्क्सवाद ने सामाजिक-आर्थिक प्रणालियों के उत्थान, विकास और पतन की प्रक्रिया के एक सर्वव्यापी और व्यापक अध्ययन का रास्ता दिखाया। लोग अपना इतिहास खुद बनाते हैं लेकिन लोगों के, जनसमूह के उद्देश्यों को क्या निर्धारित करता है – यानी, मानव समाज के जनसमूह में इन सभी टकरावों का कुल योग क्या है? भौतिक जीवन के उत्पादन की वस्तुगत स्थितियाँ क्या हैं, जो मनुष्य की सभी ऐतिहासिक गतिविधियों का आधार बनती हैं? इन स्थितियों के विकास का नियम क्या है? इन सभी की ओर मार्क्स ने ध्यान आकर्षित किया और इतिहास के एक एकल प्रक्रिया के रूप में वैज्ञानिक अध्ययन का रास्ता दिखाया, जो अपनी सभी अपार विविधता और विरोधाभासों के साथ निश्चित नियमों द्वारा शासित होती है।



अपनी प्रगति जांचें

प्रश्न 1. वर्ग-संघर्ष से आप क्या समझते हैं? सतर्क उत्तर दीजिए।

वर्ग संघर्ष

यह सामान्य ज्ञान है कि, किसी भी समाज में, उसके कुछ सदस्यों के प्रयास दूसरों के प्रयासों के साथ संघर्ष करते हैं कि सामाजिक जीवन विरोधाभासों से भरा होता है। समाज और इसके अलावा, क्रांति और प्रतिक्रिया, शांति और युद्ध, ठहराव और तेजी प्रगति या गिरावट की अवधि का एक विकल्प है। मार्क्सवाद ने इस प्रतीत होने वाली भूलभुलैया और अराजकता को नियंत्रित करने वाले कानूनों की खोज के लिए मार्गदर्शन यानी वर्ग संघर्ष का सिद्धांत प्रदान किया है। यह केवल किसी दिए गए समाज या समाजों के समूह के सभी सदस्यों के प्रयासों के योग का अध्ययन है, जो उन प्रयासों के परिणाम की वैज्ञानिक परिभाषा दे सकता है। अब परस्पर विरोधी प्रयास उन वर्गों की स्थिति और जीवन के तरीके में अंतर से उत्पन्न होते हैं, जिनमें प्रत्येक समाज विभाजित है।

मार्क्स ने कम्युनिस्ट घोषणापत्र में लिखा (आदिम समुदाय के इतिहास को छोड़कर, एंगेल्स ने बाद में जोड़ा), 'अब तक मौजूद सभी समाज का इतिहास वर्ग संघर्षों का इतिहास है।' 'फ्रीमैन और गुलाम, पेट्रीशियन और प्लेबीयन, लॉर्ड और सर्फ़, गिल्ड-मास्टर और ट्रैवेलमैन, एक शब्द में, उत्पीड़क और उत्पीड़ित, एक-दूसरे के लगातार विरोध में खड़े थे, एक निर्बाध, अब छिपी हुई, अब खुली लड़ाई, एक लड़ाई जारी रखी हर बार का अंत या तो बड़े पैमाने पर समाज के क्रांतिकारी पुनर्निर्माण मं हुआ या प्रतिद्वंद्वी वर्गों के सामान्य विनाश में... आधुनिक बुर्जुआ समाज जो सामंती समाज के खंडहरों से उभरा है, उसने वर्ग विरोधों को दूर नहीं किया है। इसने पुराने वर्गों के स्थान पर नए वर्ग, उत्पीड़न की नई स्थितियाँ, संघर्ष के नए रूप स्थापित किए हैं। हालाँकि, हमारा युग, पूंजीपति वर्ग का युग, यह विशिष्ट विशेषता रखता है। इसने वर्ग विरोधों को सरल बना दिया है। समग्र रूप से समाज तेजी से दो महान शत्रुतापूर्ण शिविरों में

विभाजित हो रहा है, दो महान वर्गों में जो सीधे एक-दूसरे का सामना कर रहे हैं- पूंजीपति वर्ग और सर्वहारा।' आज पूंजीपति वर्ग के आमने-सामने खड़े सभी वर्गों में से सर्वहारा वर्ग ही वास्तव में एक क्रांतिकारी वर्ग है। आधुनिक उद्योग के सामने अन्य वर्ग क्षयग्रस्त हो गए और अंतत: गायब हो गए; सर्वहारा उसका विशेष और आवश्यक उत्पाद है। निम्न मध्यम वर्ग, छोटे निर्माता, दुकानदार, कारीगर, किसान, ये सभी मध्यम वर्ग के अंशों के रूप में अपने अस्तित्व को विलुप्त होने से बचाने के लिए पूंजीपति वर्ग के खिलाफ लड़ते हैं। इसलिए वे क्रांतिकारी नहीं, बल्कि रूढ़िवादी हैं। इतना ही नहीं, वे प्रतिक्रियावादी हैं, क्योंकि वे इतिहास के पहिये को पीछे घुमाने की कोशिश करते हैं। यदि संयोग से वे क्रांतिकारी हैं, तो वे केवल सर्वहारा वर्ग में अपने आसन्न स्थानांतरण को ध्यान में रखते हुए हैं; इस प्रकार वे अपने वर्तमान की नहीं, बल्कि अपने भविष्य के हितों की रक्षा करते हैं; वे स्वयं को सर्वहारा वर्ग के दृष्टिकोण पर रखने के लिए अपना दृष्टिकोण त्याग देते हैं।



10.8 सारांश

मार्क्सवाद ही एक दर्शन है, जिसकी व्याप्ति पूरी दुनिया में है। मार्क्सवादी दृष्टिकोण सामाजिक, आर्थिक, सर्वहारा, राजनैतिक, शोषित और ऐतिहासिक सन्दर्भों को परखती है। मार्क्सवादी साहित्य सिद्धान्त का मुख्य लक्ष्य देश और काल के हित में भौतिक और सामाजिक सन्दर्भों के बीच एक विचारधारा उत्पन्न करना। जो पुजीपतियों के खिलाफ विद्रोह का ऐलान कर एक समाज का निर्माण करना जहाँ सभी समान और सुरक्षित हो। जहाँ भी सर्वहारा वर्ग के प्रति सहानुभूति नहीं होती है, मार्क्सवाद उसे नकारती है।



10.9 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न 1 का उत्तर : किसी भी समाज में, उसके कुछ सदस्यों के प्रयास दूसरों के प्रयासों के साथ संघर्ष करते हैं कि सामाजिक जीवन विरोधाभासों से भरा होता है।

अधिक जानने के लिए देखें 'वर्ग संघर्ष'।



10.10 अधिक जानने के लिए पढ़े

1. ऑस्टिन वारेन एवं रेनेवेलेक- साहित्य सिद्धान्त, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

2. रामविलास शर्मा- मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. नामवर सिंह- आलोचना और विचारधारा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. शिवकुमार मिश्र- मार्क्सवादी साहित्य-चिन्तन - इतिहास तथा सिद्धान्त, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
5. कुँवर पाल सिंह (संपादक)- साहित्य समीक्षा और मार्क्सवाद, पीपुल्स लिटरेसी, दिल्ली।
6. रोहिताश्व- मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र की भूमिका, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।



10.11 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रश्नों के उत्तर लिखिए :

1. 'दास कैपिटल' के रचनाकार कौन है?
2. कार्लमार्क्स का पूरा नाम क्या है?

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए :

1. मार्क्सवाद के जनक किसे मान जाता है? उनके विचारधाराओं पर प्रकाश डाले।
2. मार्क्सवादी सिद्धांत पर आलोचना कीजिए।
3. मार्क्सवाद के साथ फ्रैंकफर्ट स्कूल का क्या सम्बन्ध है?

*** ***** ***

इकाई 11 : प्रतीकवाद

इकाई की रूपरेखा

11.1 उद्देश्य

11.2 प्रस्तावना

11.3 प्रतीकवाद अवधारण

11.4 प्रतीकवाद महत्व

11.5 लेखन में प्रतीकवाद के प्रकार

11.5.1 सार्वभौमिक प्रतीकवाद

11.5.2 प्रासंगिक प्रतीकवाद

11.6 प्रतीकवाद और रूपक

11.7 प्रतीकों और रूपांकनों में अंतर

11.8 सारांश

11.9 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

11.10 अधिक जानने के लिए पढ़े

11.11 अभ्यास प्रश्न

11.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप –

- प्रतीकवाद का अर्थ और स्वरूप को जानेंगे।
- प्रतीकवाद के महत्व को समझेंगे।

11. 2 प्रस्तावना

प्रतीकात्मकता की जड़ें स्वच्छंदतावाद में पाई जा सकती हैं, जिसने व्यक्ति की भूमिका और भावना और कल्पना के अनुसार वस्तुओं की उनकी व्याख्या पर जोर दिया। यह इमैनुएल कांट के पारलौकिकवादी दर्शन से भी प्रभावित था। भावनाओं पर जोर देने के अलावा, प्रतीकवाद स्वच्छंदतावाद के समान था जिसमें यह अक्सर अलौकिक प्राणियों, कल्पनाओं और प्रतीकों का उपयोग करता है, जो वास्तविकता पर आधारित नहीं होते हैं। यह रोजमर्रा की जिंदगी और भौतिक दिखावे पर यथार्थवाद के फोकस के विपरीत है। प्रतीकवाद का प्रवर्तक है वादलेयर। साहित्यिक आन्दोलन के रूप में प्रतीकवाद अपेक्षाकृत नया वाद है।

11.3 प्रतीकवाद अवधारणा

प्रतीकवाद एक कलात्मक आंदोलन है, जो 19 के फ्रेंको-प्रशिया युद्ध के बाद, 1871 वीं शताब्दी के अंत में फ्रांस में उत्पन्न हुआ था। इस कला का लक्ष्य प्रतीकात्मकता द्वारा विचारों और भावनाओं को व्यक्त करना था, विशेष रूप से पेंटिंग, कविता और साहित्य में। कलाकारों ने स्पष्ट रूप से यथार्थवादी हुए बिना अर्थ निकालने के लिए सपनों, पौराणिक कथाओं या धर्म के प्रतीकों का उपयोग किया। प्रतीकवादियों का मानना था कि कला को यथार्थवादी कला की तुलना में अधिक भावनात्मक और आध्यात्मिक अर्थों को पकड़ने का लक्ष्य रखना चाहिए। सामान्य तौर पर, प्रतीकवादी कलाकारों ने एक व्यक्तिगत दृष्टि के पक्ष में यथार्थवादी शैली को छोड़ दिया जो एक आंतरिक भावना या मनोदशा को व्यक्त करने का प्रयास करता है। प्रतीकवादी रचना के केंद्र में मुख्य रूप से प्रतीक को रखा जाता है। आलवेर आरिया ने 1891 ई. में 'चित्रकला में प्रतीकवाद' शीर्षक लेख प्रकाशित किया। कला में 'प्रतीकात्मकता' शब्द का परिचय फ्रांसीसी कवि जीना मोरेस द्वारा लागु किया गया। प्रतीकवाद का मुख्य सिद्धांत है- 'चित्रकार की कल्पना को साकार करना। प्रतीकवाद मूल रूप से साहित्य, संगीत, चित्रकला, वास्तुकला में एक सौंदर्य प्रवृत्ति है जो, 19 वीं शताब्दी के मोड़ पर फ्रांस तथा अन्य यूरोपीय देशों में बनायीं गयी है।



महत्वपूर्ण बिंदु

- प्रतीकवाद का प्रवर्तक है- वादलेयर।
- प्रतीकवाद इमैनुएल कांट के पारलौकिकवादी दर्शन से प्रभावित था।
- प्रतीकवाद 1871 वीं शताब्दी के अंत में फ्रांस में उत्पन्न हुआ था।

11.4 प्रतीकवाद का महत्व

मनुष्यों द्वारा सब समय पूरी बात कहना या लिखना संभव नहीं होता। हमारे जीवन में बहुत से भाव इस प्रकार सूचित करने आवश्यक होते हैं, जिन्हें दूर से देखकर समझा जा सके। बहुत समय और स्थल ऐसे होते हैं, जहाँ अपने और दूसरों के लिए पहचानने का चिह्न निश्चित करना पड़ता है। यही चिह्न उस भाव या वस्तु के प्रतीक कहलाते हैं, जिसके लिए वे निश्चित किए गए हों। जैसे किसी व्यक्ति का नाम उसका प्रतीक है, नाम के द्वारा उसका सम्मान और अपमान होता है। यही बात अन्य प्रतीकों के संबंध में भी है।

प्राचीन काल के प्रसिद्ध योद्धा अपने-अपने पृथक ध्वज रखते थे। महाभारत में श्रीकृष्ण, भीष्म, द्रोण, कर्ण, युधिष्ठिर, अर्जुन, भीम आदि के विभिन्न आकृतियों वाले रथ- ध्वजों का वर्णन मिलता है। ये ध्वज दूर से ही योद्धा को सूचित कर देते थे। बड़े आदमियों के भवनों पर

भी अपने पारिवारिक ध्वज लगाए जाते थे। मन्दिरों पर अब भी ध्वज लगाने का नियम है, जिनसे उनकी पहचान हो सकती है। संस्थाओं के ध्वज तथा राष्ट्रध्वज का जो सम्मान है, वह सभी जानते हैं। इनके अपमान के कारण कभी-कभी बड़े संग्राम तक हो जाते हैं।

नित्य प्रतीकों का श्रेणी विभाजन करते समय हमको कई प्रकार के प्रतीक मिलते हैं-

1. चिह्न प्रतीक, जैसे- अक्षराकृतियां, स्वास्तिक, त्रिभुज, चतुर्भुज आदि।
2. रंगों का प्रतीक, जैसे-श्वेत, लाल आदि रंग भाव सूचक हैं।
3. पदार्थ- प्रतीक, जैसे- शंख, स्वर्ण पाषाणादि।
4. प्राणी प्रतीक, जैसे- गाय, वृषभ, मयूर, हंस आदि।
5. पुष्प प्रतीक, जैसे- कमल आदि।
6. शस्त्र प्रतीक, जैसे- चक्र, त्रिशूल, गदा आदि।
7. वाद्य प्रतीक, जैसे- शंख, डमरू, भेरी, वंशी आदि।
8. वृक्ष प्रतीक, जैसे- आंवला, पीपल, तुलसी आदि।
9. वेश- प्रतीक, जैसे- शिखा, यज्ञोपवीत, कंठी, माला, गेरुआ वस्त्र, दंड, तिलक आदि।
10. संकेत प्रतीक, जैसे- मुद्राएं।

चिह्न प्रतीकों में हिन्दू-समाज में स्वास्तिक सर्वप्रधान है। जैसे समस्त अक्षर 'अकार' से उत्पन्न हुए हैं, वैसे ही समस्त रेखाकृतियां 'स्वास्तिक' के ही अंतर्गत आ जाती हैं। प्रणव की आकृति नाद रहित होने पर स्वास्तिक ही मानी जाती है। केंद्र के चारों ओर प्रगति, चारों ओर रक्षा, चारों तरफ उन्मुक्त द्वार यह स्वास्तिक में स्पष्ट दिखलाई पड़ती है। स्वास्तिक (कल्याण) के लिए यही आवश्यक है। स्वास्तिक प्रथम पूज्य श्री गणेश जी का चिह्न है। इसका अर्थ है कि स्वास्तिक द्वारा हम गणेशजी की शक्ति का लाभ प्राप्त कर सकते हैं। इस प्रधान मंगल चिह्न को पारसी धर्म ने उल्टा कर लिया और नाम 'अपास्तिक' रखा। इसी प्रकार ईसाइयों का क्रॉस भी इसी का संक्षिप्त रूप है, प्रणव का यह रूप न लेकर जिन्होंने नाद को प्रतीक माना उनकी परंपरा में वह काल व क्रम से चांद और तारे के रूप मे आ गया, जैसे कि मुसलमानों में। पर खोज करने से इन सबका उद्गम स्वास्तिक ही सिद्ध होता है।

पुष्प प्रतीकों में कमल भारतवर्ष का सबसे अधिक सुंदर पुष्प है, जिसकी उपमा आदर्श सौंदर्य वाले नर-नारियों के लिए दी जाती है। शस्त्र-प्रतीक में चक्र और त्रिशूल सबसे महत्वपूर्ण हैं, जो विष्णु और शिव के मुख्य शस्त्र है। प्राणी-प्रतीकों में गौ, पृथ्वी क्षमा का प्रतीक है। वृषभ धर्म का प्रतीक है। हंस, ज्ञान और निर्णय का प्रतीक है तथा सर्प बल और प्राण का प्रतीक है। इनमें से कुछ तो ऐसे हैं कि जिनका अर्थ स्पष्ट है, जैसे हंस के शुभ्रता, तीव्रगति नीर क्षीर विवेक आदि गुण ज्ञान और विवेक को प्रकट करते हैं। इसी प्रकार गाय भी पृथ्वी के समान मनुष्य मात्र की पालक, धारक और क्षमा की मूर्ति है। इसी प्रकार वाद्य-प्रतीक, वृक्ष-प्रतीक, वेश-प्रतीक के द्वारा भी अनेक प्रकार के भावों और उद्देश्यों को प्रकट किया जाता है।

हम हर समय अपने आस-पास प्रतीकों को देखते हैं - हमारे मौसमी उत्सव उन्हीं से

बने होते हैं। हम क्रिसमस के प्रतीक के रूप में घंटियाँ, सांता की टोपियाँ और हिरन जैसे प्रतीकों का उपयोग करते हैं; हैलोवीन के प्रतीक के रूप में जैक ओ'लैंटर्न, बेडशीट भूत और मकड़ी के जाले; और ईस्टर के प्रतीक के रूप में अंडे, खरगोश और नवजात चूजे।

हम सड़क पर गाड़ी चलाते समय सड़क संकेतों या सुपरमार्केट में खरीदारी करते समय लोगो के माध्यम से एक-दूसरे को अर्थ बताने के लिए प्रतीकवाद का उपयोग करते हैं।

लेखन में प्रतीकवाद के लिए भी यही बात लागू होती है। कहानीकारों की कई पीढ़ियों ने प्रतीकात्मक अर्थों का एक सामूहिक संग्रह बनाया है, जिसे दुनिया भर में मान्यता प्राप्त है। आइए जानें कि प्रतीकवाद क्या है, हमारी संस्कृति में पहले से मौजूद प्रतीकों का उपयोग कैसे करें और वे आपको अधिक आकर्षक कहानी बनाने में कैसे मदद कर सकते हैं।

प्रतीक गहरे सहज स्तर पर हमारे साथ प्रतिध्वनित होते हैं क्योंकि हम हर समय अपने आस-पास की रोजमर्रा की जिंदगी में अर्थ खोजने के आदी होते हैं। किसी उपन्यास या लघु कहानी में प्रतीकवाद व्यक्त करने के लिए, लेखक विषयों को जोड़ने और गहरे अर्थ को संप्रेषित करने के लिए सेटिंग्स, आइटम या यहाँ तक कि पात्रों का उपयोग करते हैं। उदाहरण के लिए, एक भयंकर तूफ़ान दो लोगों के बीच पनप रहे संघर्ष का प्रतीक हो सकता है। गुलाब जैसी कोई वस्तु जो मुरझाने लगी हो वह जोड़े के कम होते जुनून का प्रतीक हो सकती है। यहाँ तक कि एक चरित्र भी प्रतीक हो सकता है - उदाहरण के लिए, किसी दम्पति का बच्चा उनकी मासूमियत, आशा और आदर्शों का प्रतीक हो सकता है।

हम इस लेख में आगे चलकर प्रतीकात्मकता के अन्य उदाहरण देखेंगे।

11.5 लेखन में प्रतीकवाद के प्रकार

साहित्य में दो प्रकार के प्रतीकवाद का प्रयोग होता है। यहाँ बताया गया है कि किसी कथा में प्रत्येक प्रकार का प्रतीकवाद कैसे काम करता है।

11.5.1 सार्वभौमिक प्रतीकवाद

पहला सार्वभौमिक प्रतीकवाद है, जिसमें लेखक उन प्रतीकों का उपयोग करता है, जो हमारी सांस्कृतिक भाषा का अंतर्निहित हिस्सा हैं। ये अवधारणाएँ मिथकों, इतिहासों, धर्मों या यहाँ तक कि हमारे दैनिक जीवन से भी हो सकती हैं।

उदाहरण के लिए, अधिकांश पाठक समझेंगे कि गुलाब प्रेम का प्रतीक है या फ़ीनिक्स पुनर्जन्म का प्रतीक है या तराजू का एक सेट संतुलन का प्रतीक है। हम प्राचीन कहानियों के माध्यम से हमें दिए गए आंकड़ों को पहचान सकते हैं, जैसे कि उल्लू जो ज्ञान की देवी एथेना के लिए पवित्र थे या आध्यात्मिक सफाई और बहाली के स्रोत के रूप में जल निकाय थे। धार्मिक प्रतीकवाद भी इसी श्रेणी में आता है।

लेखक अपने लेखन को प्रतिध्वनि, शक्ति और गहराई देने के लिए इस सांस्कृतिक भाषा का उपयोग कर सकते हैं।

11.5.2 प्रासंगिक प्रतीकवाद

दूसरा है प्रासंगिक प्रतीकवाद या ऐसी चीज़ें जिनका लेखक द्वारा बनाई गई दुनिया के भीतर केवल प्रतीकात्मक अर्थ होता है।

उदाहरण के लिए, विलियम गोल्डिंग के रूपक 'लॉर्ड ऑफ द फ्लाईज़' पुस्तक के पात्र समूह बैठकों के दौरान एक प्रकार की बात करने वाली छड़ी के रूप में एक बड़े शंख का उपयोग करते हैं – केवल शंख को पकड़ने वाले व्यक्ति को आवाज दी जाती है। ऐसे में शंख सभ्यता, व्यवस्था और संतुलन का प्रतीक बन जाता है। बाद में, जब खोल टूटता है तो यह उन्हीं नैतिकताओं के विनाश का प्रतिनिधित्व करता है, जिन्होंने उन्हें मानव बनाया।

हम अपने जीवन में सीप को आवश्यक रूप से ये अर्थ नहीं देंगे, लेकिन गोल्डिंग ने अपनी दुनिया में सीप को जो अर्थ दिया है, वह स्पष्ट और शक्तिशाली हो जाता है, क्योंकि उन्होंने उसे अपने कथानक में स्थान दिया है।

अक्सर, प्रासंगिक प्रतीकवाद आपके पहले ड्राफ्ट के बाद ही स्पष्ट हो जाता है। आप वापस जा सकते हैं और अपनी संपादन प्रक्रिया के दौरान इन अंतर्निहित अवधारणाओं को बढ़ा सकते हैं।

11.6 प्रतीकवाद और रूपक

प्रतीकवाद और रूपक दोनों का उपयोग भावनाओं और विचारों को रचनात्मक, ज्वलंत तरीके से व्यक्त करने के लिए किया जाता है। अंतर यह है कि प्रतीकवाद उस कल्पना का उपयोग करता है, जिसे हम या तो अपने ज्ञान और अनुभवों से या कथानक के भीतर की घटनाओं से पहचानते हैं। दूसरी ओर, रूपक, पाठक को किसी चीज़ के बारे में नई रोशनी में सोचने के लिए दो विपरीत विचारों का उपयोग करता है।

उदाहरण के लिए, यदि आप सूरज डूबने के दौरान दो लोगों को बहस करते हुए दिखाते हैं, तो हम कह सकते हैं कि डूबता सूरज एक उज्ज्वल और गौरवशाली रिश्ते के अंत का प्रतीक है। एक लेखक के रूप में, आप इस क्षण को सजाने के लिए सुंदर शब्दों का उपयोग कर सकते हैं (क्योंकि आप कर सकते हैं, और क्योंकि यह मजेदार है), लेकिन वास्तव में आपके पाठक पहले ही समझ जाएंगे कि इस क्षण में डूबता सूरज उन्हें क्या बताने की कोशिश कर रहा है। उन्होंने परत-दर-परत अपने दिमाग में पहले से ही इन संबंधों को बना लिया है, क्योंकि वे इस क्षण को पहले भी देख चुके हैं।

वे महिला की स्वेटशर्ट, पुरुष के नए नुस्खे वाले चश्मे, महिला द्वारा गलती से छोड़े गए टूटे हुए लॉकेट के महत्व को भी समझेंगे, क्योंकि आपने अपनी कहानी में महत्वपूर्ण क्षणों में इन चीजों के प्रासंगिक प्रतीकवाद को दिखाने का काम किया है। पाठक यह पहचान लेंगे कि ये सामान्य सी लगने वाली चीज़ें एक बहुत बड़ी समग्रता के महत्वपूर्ण टुकड़े हैं।

दूसरी ओर, यदि आपका कोई पात्र कहता है कि उसका साथी आग बुझाने वाला है, तो आपके पाठक को यह समझने में कुछ मिनट लग सकता है। उनका साथी कैसा है? हो सकता है कि चरित्र वास्तव में जो कहना चाह रहा है, वह यह है कि उनका साथी पहले देखने में बहुत चमकदार और शांत था और फिर वे इतनी देर तक उनकी रसोई में घूमते रहे कि वे भूल गए कि वे वहाँ थे, लेकिन अंदर से चरित्र जानता है कि जब भी वे वास्तविक मुसीबत में होते तो उनका साथी आग बुझाने के लिए वहाँ मौजूद होता। यह एक रूपक है।

साहित्य में प्रतीकवाद उन धागों को लेता है जो दुनिया की हमारी समझ में पहले से मौजूद हैं और उनका उपयोग हमारी कहानियों में शक्तिशाली, भावनात्मक रूप से गूंजने वाले क्षणों को बनाने के लिए करता है। अंतर्निहित सत्य को संप्रेषित करने के लिए रूपक दो पूरी तरह से असंबंधित चीजों का उपयोग करते हैं।

11.7 प्रतीकों और रूपांकनों में अंतर

प्रतीकवाद और रूपांकन दोनों ही पाठक के साथ प्रतीकात्मक मूल्य संप्रेषित करने में समान भूमिका निभाते हैं; हालाँकि, उनका उपयोग बिल्कुल उसी तरीके से नहीं किया जाता है।

मोटिफ किसी कथा के भीतर एक आवर्ती विषयगत प्रतीक है। इसका मतलब है कि एक ही छवि या एक ही विचार को कथानक में कई बार प्रस्तुत किया जाता है, जो काम के विषयों को समर्थन देने और बनाने में मदद करता है।

उदाहरण के लिए, द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान किताबों का सेट लिखने वाला एक लेखक किताबों को आशा के प्रतीक के रूप में उपयोग करने का निर्णय ले सकता है। वे एक सैनिक को रात में एक पीटा हुआ पुराना पेपरबैक पढ़ते हुए दिखा सकते हैं, एक खाली गांव में छोड़ी गई एक जली हुई और सड़ने वाली किताब, कहानी के खलनायक द्वारा टुकड़ों में फाड़ी गई एक डायरी और फिर वही सैनिक अपने बच्चों को कहानी की किताब पढ़ते हुए दिखा सकता है, जब वह अंततः अपने घर का रास्ता ढूंढ़ लेता है।

चेतन या अवचेतन स्तर पर, पाठक इस पैटर्न को पहचानना शुरू कर देगा क्योंकि यह पूरी कथा में अपना रास्ता बनाता है।

रूपांकन एक विशिष्ट प्रकार का प्रतीकवाद है, लेकिन हम अक्सर प्रतीकवाद को कहानी में एक क्षण में प्रस्तुत व्यापक विचारों के रूप में पहचानते हैं। उदाहरण के लिए, एक समुद्री साहसिक उपन्यास में एक समुद्री राक्षस लालच की विनाशकारी शक्ति का प्रतीक हो

सकता है और एक जहाज का उजाड़ना नए सिरे से शुरू करने के लिए अनावश्यक चीजों को हटाने का प्रतीक हो सकता है।

प्रतीकवाद और रूपांकन दोनों ही पाठक को दिखाते हैं कि आपकी कहानी वास्तव में सूक्ष्म, सुरुचिपूर्ण तरीके से क्या संप्रेषित कर रही है?



अपनी प्रगति जांचें

प्रश्न 1. प्रतीकवाद और रूपक के अंतरों को स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न 2. प्रासंगिक प्रतीकवाद किसे कहते हैं?



11.8 सारांश

प्रतीकवाद मूलत: आधुनिक युग का एक साहित्यिक आन्दोलन है। मानव जब अपने मन की भावनाओं सीधे तरीके से कर नहीं पाते, तब प्रतीकों का सहारा लेते हैं। साहित्यशास्त्रीय सिद्धांतों में प्रतीकवाद का अपना महत्व है, लेकिन इसमें यथार्थ जगत का बहिष्कार है। प्रतीकवाद में मूलत: आत्मकेंद्रिकता प्रधान है। कवि अमूर्त को मूर्त बनाकर प्रयोग करता है।

11.9 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न 1 का उत्तर : प्रतीकवाद और रूपक दोनों का उपयोग भावनाओं और विचारों को रचनात्मक, ज्वलंत तरीके से व्यक्त करने के लिए किया जाता है। अंतर यह है कि प्रतीकवाद उस कल्पना का उपयोग करता है, जिसे हम या तो अपने ज्ञान और अनुभवों से या कथानक के भीतर की घटनाओं से पहचानते हैं।

अधिक जानने के लिए 'प्रगतिवाद और रूपक' को ध्यानपूर्वक पढ़ें।

प्रश्न 2 का उत्तर : प्रासंगिक प्रतीकवाद या ऐसी चीज़ें जिनका लेखक द्वारा बनाई गई दुनिया के भीतर केवल प्रतीकात्मक अर्थ होता है।

अधिक जानने के लिए पढ़ें 'प्रासंगिक प्रतीकवाद'।



11.10 अधिक जानने के लिए पढ़ें

1. श्रीकांत खरे(अनुवादक)- सौन्दर्यशास्त्र के मूल तत्व, राइस संस्थान के व्याख्यानों का हिन्दी अनुवाद, किताब महल, इलाहाबाद 1967।
2. करुणाशंकर उपाध्याय- पाश्चात्य काव्य-चिन्तन, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।



11.11 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रश्नों के उत्तर लिखिए :

1. प्रतीकवाद का जन्म कहाँ हुआ?
2. 'प्रासंगिक प्रतीकवाद' क्या है?

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए :

1. प्रतीकवाद से आप क्या समझते हैं? इसके महत्व पर विचार कीजिए।
2. प्रतीकवाद के प्रवर्तक किसे माना जाता है? लेखन में प्रतीकवाद के कितने भेद हैं- सोदाहरण लिखिए।

*** ***** ***

इकाई 12 : कलावाद

इकाई की रूपरेखा

12.1 उद्देश्य

12.2 प्रस्तावना

12.3 स्वरूप एवं अवधारणा

12.4 सारांश

12.5 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

12.6 अधिक जानने के लिए पढ़े

12.7 अभ्यास प्रश्न

12.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप –

- कलावाद के स्वरूप से अवगत होंगे।
- साहित्य में इसकी क्या उपयोगिता हैं? इसके बारे में ज्ञात हो पाएंगे।
- कलावाद की विशेषताओं से परिचय प्राप्त करेंगे।

12. 2 प्रस्तावना

कलावाद 'कला कला के लिए' (Art for art's sake) मान्यता पर आधारित कला के प्रति एक दृष्टिकोण है। जिसे लेकर 19 वीं शताब्दी के दौरान यूरोप में व्यापक वादविवाद छिड़ा था। कलावाद को साहित्य एवं कला के क्षेत्र में उपयोगितावाद के विलोम के रूप में जाना जाता है। इस सिद्धांत का प्रतिपादन विक्टर कूजे ने 1818 में किया था। इसके अनुसार कला का उद्देश्य किसी नैतिक या धार्मिक उद्देश्य की प्राप्ति नहीं, बल्कि स्वंय अपने पूर्णता की तलाश है। कला सौन्दर्यानुभूति का वाहक है, इसलिये इसे उपयोगिता की कसौटी पर नहीं परखा जाना चाहिये।

12. 3 स्वरूप एवं अवधारणा

कलावादियों के अनुसार कलाकार लोकोत्तर प्राणी, कला लोकातीत वस्तु तथा कलाजन्य आनंद, अलौकिक आस्वादयुक्त एवं समाज निरपेक्ष होता है। इसके विपरीत उपयोगितावादी कला को न केवल समाज की मनोवृत्तियाँ परिवर्तित करके वांछित दिशा की ओर अग्रसारित करने का सशक्त साधन मानते हैं, अपितु उसे सिद्धांत प्रचार का सर्वोत्तम माध्यम भी बताते हैं। उपयोगितावादियों ने कलावादियों पर संकीर्ण एवं व्यक्तिनिष्ठ होने का आरोप लगाते हुए कहा है, वे वायवीय घोड़े पर आरूढ़ हैं। कलावादियों ने उपयोगितावादियों पर स्थूल सामाजिकता का

आग्रही होने का लांछन लगाया और कहा, उन्होंने हमें स्वर्ग देने का वचन दिया था, लेकिन दिया है रुग्णनालय। विचारकों का एक तीसरा वर्ग भी है, जो कलावाद के व्यक्तिपक्ष और उपयोगितावाद के समाजपक्ष के समन्वय को हितकर मानता है।

कलावादी दृष्टिकोण की प्रत्यक्षाप्रत्यक्ष सत्ता यूरोप में प्लेटो तथा अरस्तू से लेकर आज तक किसी न किसी रूप में लगातार मिलती है। प्लेटो ने अपने ग्रंथ 'रिपब्लिक' में कवियों और कलाकारों को राष्ट्र बहिष्कृत कर देने की व्यवस्था दी है; कारण, उनकी दृष्टि में कल्पनाशील कलाकारों एवं कवियों का असीम प्रभाव नैतिक एवं सामाजिक दृष्टि से अवांछनीय था। अरस्तू ने यद्यपि अपने गुरु प्लेटो की नैतिक एवं सामाजिक धारणा का खुले रूप में खंडन नहीं किया है, साथ ही कला में नैतिक तत्व तथा उपदेशात्मकता भी उन्हें अमान्य नहीं किया है, तो भी प्रसिद्ध कला समीक्षक बूचर के मतानुसार अरस्तु ने ही पहले पहल कलाशास्त्र को नीतिशास्त्र से पृथक किया और बताया कि परिष्कृत आनंदानुभूति ही काव्यकला अथवा कला का चरम लक्ष्य होता है। रोम के प्रसिद्ध विचारक सिसरों ने शालीनता (डेकोरम) तथा उदात्तता (सब्लाइमनेस) को कला का प्रमुख प्रतिपाद्य निर्धारित किया है। लोंगिनुस (लोंजाइनस) ने अपनी कृति 'पेरिइप्सुस' में कला को न केवल शिक्षा और मनोरंजन से भिन्न एवं श्रेष्ठ माना है, बल्कि उसे संप्रेरणा के उच्च धरातल पर प्रतिष्ठित करके, उसके स्वतंत्र मूल्यांकन का परामर्श भी दिया है। लोंगिनुस के अनुसार काव्य तथा कला का मुख्य तत्व उदात्त है और भावना का उदात्तीकरण ही उनका प्रधान परिणाम होता है जिसका व्यक्ति से भी और समाज से भी सीधा संबंध रहता है। अत: अपने वक्तव्य और प्रतिपादन में लोंगिनुस निश्चित ही मध्यमार्गी है।

यूरोप की शास्त्रीय या क्लासिकल कला का पल्लवन अधिकांशत: ईसाई धर्म अथवा 'चर्च' के सरंक्षण में हुआ। अत: सातवीं से 15वीं ईसवीं के बीच रोम को केंद्र मानकर जिस बैजंतिया (बाइज़ैंटाइन अर्थात रोम साम्राज्य में विकसित शैली) कला का विकास मिस्र से रूस तक हुआ, वह चर्च आश्रित होने के कारण नैतिक-धार्मिक-मूल्य-समन्वित थी, अत: उसका सोद्देश्य तथा उपदेशात्मक होना जरूरी था और इसीलिए उसमें कलापक्ष गौण ही रहा। तो भी ऐसा नहीं है कि उक्त काल की कला में कल्पना तथा भावनाओं के लिए कोई छूट थी ही नहीं। इसके विपरीत धार्मिक दृष्टिसंपन्न कलाकार बिना किसी बाहरी नियंत्रण अथवा बाध्यता के उच्च कोटि की कला का सृजन करते थे। टॉल्स्टॉय (1828-1910 ई.) कलावादी विचारधारा के प्रबल विरोधी थे। उनके मत से धर्म के प्रति विश्वास का अभाव ही कलावादी विचारों को जन्म देता है और कला का साध्य न आनंद है, न ही सौंदर्य। वे नैतिकता के प्रति अत्याग्रही थे और गांधी जी की तरह उनका दृष्टिकोण सुधारवादी था। सुधारवाद प्रकारांतर से उपयोगितावाद ही है। अत: टॉल्स्टॉय के लिए कला निश्चित ही एक गौण साधन मात्र रहा।

इटली के महन कवि दांते एलीगियरी (1265-1321 ई.) ने कला के क्षेत्र में पुन: उदात्त गुणों एवं भव्य शैली की प्रतिष्ठा की। दांते का प्रभाव कुछ ही दिन रहा। पश्चात शास्त्रीय दृष्टि धीरे-धीरे रूमानी दृष्टिकोण से आच्छादित होने लगी। फलत: इस समय कला संबंधी मूल्यों

में भारी परिवर्तन हुआ। 17वीं शताब्दी को कला की दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण कहा जा सकता है। इसके दौरान फ्रांस में नव्यशास्त्रवाद (नियोक्लासिसिज्म्) का उदय हुआ। लेकिन यह भी मध्यकालीन चिंतन के नवीन संस्करण से अधिक नहीं था।

रेनेसाँ (1453 ई.) के बाद यूरोप में मध्यकालीन नैतिक मूल्यों का विघटन होना शुरू हुआ, जिससे परंपरावादी तथा स्वतंत्रमूलक विचारों के बीच अस्थिरता का वातावरण ही उत्पन्न नहीं हुआ बल्कि परस्पर टकराव भी होने लगा। इसका कारण इस समय किसी सुदृढ़ दर्शन का अभाव था। सन् 1866 ई. के लगभग विविध साहित्यिक एवं कला संबंधी वादों के प्रवर्तन में आग्रही देश फ्रांस में 'ल आर्त पोर ल आर्त' सूत्रकथन सामने आया जिसका अंग्रेजी अनुवाद 'आर्ट फ़ॉर आर्ट्स सेक' है और हिंदी में जिसे 'कला कला के लिए' वाक्यांश से जाना जाता है। यहीं से कलावादी विचारधारा का प्रत्यक्ष आरंभ माना जा सकता है। अमरीकी चित्रकार जेम्स एबॉट मैकनील ह्वीस्लर (1834-1903 ई.), जो आजीवन फ्रांस और इंग्लैंड में कार्यरत रहा, कलावाद का प्रबल समर्थक बना। हुआ यह कि 1877 ई. में ग्रॉसवेनर चित्रकला प्रदर्शनी में अंग्रेजी के प्रख्यात समालोचक रस्किन ने ह्वीस्लर के चित्रों की तीखी आलोचना की और कहा, ह्वीस्लर अपने चित्रों के माध्यम से दर्शकों के चेहरों पर रंगभरी प्यालियाँ उँड़ेल देता है। रस्किन के इस कथन पर अदालत में मुकदमा शुरू हो गया जिसमें ह्वीस्लर को अंतत: क्षतिपूर्ति के रूप में एक फार्थिंग (इंग्लैंड में प्रचलित सबसे छोटा सिक्का) मिला। इसके बाद भी कला के उद्देश्य को लेकर रस्किन और ह्वीस्लर के बीच वादविवाद चलता रहा। रस्किन कला को नैतिकता से अलग-थलग बिल्कुल स्वंतत्र एवं स्वत:पूर्ण मानता था। इसी से प्रेरित होकर ह्वीस्लर ने अपनी पूरी शक्ति से 'कला कला के लिए' मत का प्रवर्तन किया जो अतिवाद की सीमा तक जा पहुँचा।

फ्रैंसिस हरबर्ट ब्रैडले, क्लाइव बेल, रोजर एलियट फ्राई तथा जार्ज इन्नेस इत्यादि प्रमुख समालोचक कलावादी विचारधारा के प्रबल पोषक थे। ब्रैडले ने तो अपने ग्रंथ 'पोएट्री फ़ॉर पोएट्रीज़ सेक' में स्पष्ट रूप से घोषणा की कि नैतिकता कविता का मात्र बाह्य पक्ष है। अत: कविता की श्रेष्ठता के लिए उसे अनिवार्य मानना हास्यास्पद है। क्लाइव बेल ने आधुनिक चित्रकला के संदर्भ में रूपतत्व को प्रमुख माना और 1914 ई. में 'सिगनिफ़िकेंट फ़ार्म' का सिद्धांत प्रस्तुत किया जिसका पुनरुद्धार रोजर एलियट फ्राई ने 1920 ई. में किया। क्रोचे के अभिव्यंजनावाद से कलावाद को एक सुस्पष्ट दार्शनिक आधार प्राप्त हो गया। कांट की स्थापना 'सौंदर्य का कोई बाह्य अस्तित्व नहीं है' को आधार बनाकर क्रोचे ने अपने 'ला स्पिरितो' नामक ग्रंथ में सौंदर्यबोध के लिए 'अंत: प्रज्ञा' (इनट्यूशन) की सत्ता का प्रतिपादन किया और बताया कि सौंदर्यसृष्टि तथा सौंदर्यानुभूति दोनों ही सूक्ष्म मानसिक व्यापार हैं। साथ ही वर्ण-वस्तु तथा अभिव्यंजना के बीच तात्विक एकता होती है। अत: कलापक्ष और वस्तुपक्ष को विच्छिन्न करके देखना भ्रामक है। क्रोचे के अनुसार कला मूलत: एक आध्यात्मिक क्रिया है, इसलिए उसकी दृष्टि में अभिव्यंजना के अतिरिक्त कला का कोई अन्य उद्देश्य अथवा प्रयोजन नहीं होता। इतना ही नहीं, क्रोचे ने कला को नैतिक किंवा शैक्षणिक सीमाओं से मुक्त भी माना है।

देखा जाए तो क्रोचे के सिद्धांत द्वारा एक प्रकार से उपयोगितावादी मान्यता का खंडन हो जाता है, लेकिन उक्त सिद्धांत कला के अमूर्त व्यापार पर ही लागू होता है, मूर्त पर नहीं। क्रोचे का कला सिद्धांत तत्वत: समाजविरोधी नहीं है क्योंकि मूर्त होने पर वह भी कला को समाजनिरपेक्ष नहीं मानता। फ्रायड के 'स्वप्नवाद' से भी कलावादी दृष्टि को काफी बल मिला। आई.ए.रिचर्ड्स ने अपनी पुस्तक 'प्रिंसिपल्स ऑव लिटरेरी क्रिटिसिज्म्' में कलावादी दृष्टि का खंडन सैद्धांतिक आधार पर करते हुए प्रेषणीयता को काव्य प्रक्रिया में विशेष महत्व प्रदान किया तथा कहा कि काव्य की सत्ता शेष जगत से भिन्न नहीं है और न ही काव्य की अनुभूति शेष जगत की अनुभूति से भिन्न है। इस प्रकार रिचर्ड्स ने कला के क्षेत्र में उपयोगितावाद को पुन: प्रतिष्ठा किया।

मार्क्सवाद के उदय के साथ कलावादी मान्यताओं का तेजी से विघटन हुआ। मार्कस ने अपने अर्थशास्त्र में कला के प्रति उपयोगितावादी दृष्टिकोण अपनाया और कहा कि कला जनता के लिए, मुख्यत: सैनिकों और श्रमिकों के लिए ही है। स्टालिन ने रूस में और माओ ने चीन में कला तथा साहित्य को राजनीति के प्रचार का प्रमुख साधन माना एवं उसपर राजशक्ति का अंकुश लगा दिया। माओ ने 'प्राब्लम्स ऑव आर्ट ऐंड लिटरेचर' शीर्षक अपने परिपत्र में मार्कस की उपर्युक्त स्थापनाओं के प्रति आस्था व्यक्त की है। मार्क्सवादी समालोचक कॉडवेल ने भी कलावादी विचारधारा को विशुद्ध बूर्जुआ दृष्टि से उत्पन्न कुत्सित वृत्ति का परिणाम बताया है। मार्क्सवादी खेमे में लेव त्रोत्सकी ही एक ऐसा व्यक्ति है जा कला के क्षेत्र में राजनीतिक पार्टी के हस्तेक्षप को अनुचित मानता है। 'लिटरेचर ऐंड रिवोल्यूशन' नामक अपने ग्रंथ में उसने स्पष्ट कहा है, कला के क्षेत्र में पार्टी को आदेश देने की आवश्यकता नहीं है। यह ठीक है कि पार्टी के कर्तव्यों में कला की रक्षा और उसकी सहायता करना भी है, लेकिन नेतृत्व उस क्षेत्र में अपरोक्ष रूप से ही हो सकता है। इधर आई.पी. पावलोव आदि विद्वानों द्वारा प्रस्तुत शरीर-क्रिया-मनोविज्ञान संबंधी उच्च अध्ययन द्वारा अंतिम रूप से निर्णय हो गया है कि कला भी व्यक्ति एवं समाज के लिए उतनी ही उपयोगी है, जितनी अन्य सामान्य भौतिक उपादान।



अपनी प्रगति जांचें

प्रश्न 1. 'कला कला के लिए' इस बात को ध्यान में रखकर कलावाद पर प्रकाश डालिए।

भारतीय साहित्य में भी अलंकार, रीति, वक्रोक्ति आदि से संबंधित अनेक ऐसे संप्रदाय रहे हैं जिनकी दृष्टि में कलापक्ष अधिक महत्वपूर्ण था। हिंदी के आधुनिक साहित्य में प्रेमचंद, दिनकर आदि उपयोगितावादी थे तो प्रसाद ने आनंदवादी दृष्टि अपनाई जो कलावाद के अधिक निकट है। अज्ञेय, महादेवी वर्मा आदि कलावादी हैं तो आचार्य रामचंद्र शुक्ल, डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ. रामविलास शर्मा आदि आलोचकों की दृष्टि विशुद्ध उपयोगितावादी है। डॉ. श्यामसुंदरदास साहित्य में कलावाद एवं उपयोगितावाद के समन्वित रूप को ही उत्तम और श्रेयस्कर मानते हैं।



12.4 सारांश

'कला कला के लिए' इस विचार के अनुसार कला का एक अंतर्निहित मूल्य है जो इसके विषय-वस्तु या किसी भी सामाजिक, राजनीतिक या नैतिक महत्व से स्वतंत्र है। इसके विपरीत, कला को पूरी तरह से अपनी शर्तों पर आंका जाना चाहिए- इसके अनुसार यह सुंदर है या नहीं, अपने औपचारिक गुणों (रेखा, रंग, पैटर्न, आदि का उपयोग) के माध्यम से दर्शकों में उत्साह या श्रद्धा पैदा करने में सक्षम है।



12.5 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न 1 का उत्तर : कलावाद 'कला कला के लिए' (Art for art's sake) मान्यता पर आधारित कला के प्रति एक दृष्टिकोण है। इसके अनुसार कला का उद्देश्य किसी नैतिक या धार्मिक उद्देश्य की प्राप्ति नहीं, बल्कि स्वंय अपने पूर्णता की तलाश है। कला सौन्दर्यानुभूति का वाहक है, इसलिए इसे उपयोगिता की कसौटी पर नहीं परखा जाना चाहिए।
अधिक जानने के लिए 'स्वरूप एवं अवधारणा' को ध्यानपूर्वक पढ़ें।



12.6 अधिक जानने के लिए पढ़े

1. श्रीकांत खरे (अनुवादक)- सौन्दर्यशास्त्र के मूल तत्व, राइस संस्थान के व्याख्यानों का हिन्दी अनुवाद, किताब महल, इलाहाबाद 1967।
2. बच्चन सिंह- आलोचक और आलोचना, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
3. करुणाशंकर उपाध्याय- पाश्चात्य काव्य-चिन्तन, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।



12.7 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रश्नों के उत्तर लिखिए :

1. 'कलावाद' किस मान्यता पर आधारित है?
2. 'कलावाद' के प्रवर्तक कौन है?

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए :

1. कलावाद से आप क्या समझते हैं ? इसके स्वरूप पर प्रकाश डाले।
2. कलावाद के प्रवर्तक किसे माना जाता है ? इसकी अवाधाराओं पर एक आलेख प्रस्तुत कीजिये।

*** ***** ***

इकाई 13 : अस्तित्ववाद

इकाई की रूपरेखा

13.1 उद्देश्य
13.2 प्रस्तावना
13.3 अस्तित्ववाद की शुरुआत
13.4 अस्तित्ववाद का विस्तार
13.5 अस्तित्ववाद का स्वरूप
13.6 अस्तित्ववाद
13.7 अस्तित्ववाद की प्रमुख प्रवृत्तियाँ एवं विशेषताएँ
13.8 सारांश
13.9 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)
13.10 अधिक जानने के लिए पढ़े
13.11 अभ्यास प्रश्न

13.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप –

- अस्तित्ववाद के स्वरूप से परिचित होंगे।
- अस्तित्ववाद से जुड़े प्रमुख चिन्तकों और लेखकों के बारे में जान सकेंगे।
- अस्तित्ववाद के आरम्भ के इतिहास के बारे में अवगत होंगे।
- साहित्य पर अस्तित्ववाद के प्रभाव को समझ सकेंगे।

13.2 प्रस्तावना

अस्तित्ववाद एक ऐसा दर्शन है जो व्यक्ति के अस्तित्व, आजादी और चुनाव को महत्व देता है। किसी विशेष विचार या प्रत्यय के स्थान पर व्यक्ति के अस्तित्व को महत्व देने वाले दर्शन को अस्तित्ववाद के नाम से जाना जाता है। इस दर्शन के अनुसार सारे विचार या सिद्धान्त व्यक्ति की चिन्ता के ही परिणाम हैं। पहले चिन्तन करनेवाला मानव या व्यक्ति ही अस्तित्व में आया, अत: व्यक्ति ही प्रमुख है, विचार और सिद्धान्त गौण।

अस्तित्ववादियों का मानना है कि दु:ख या संकट की घड़ी में ही व्यक्ति को अपने अस्तित्व का ज्ञान होता है। इसलिए मनुष्य को दु:ख और संकट का निषेध नहीं करना चाहिए। फ्योदोर मिखाइलोविच दोस्तोयेव्स्की ने भी कहा है कि 'यदि ईश्वर के अस्तित्व को मिटा दें तो फिर सबकुछ सम्भव है।'

13.3 अस्तित्ववाद की शुरुआत

अस्तित्ववाद का प्रारम्भ जर्मनी दार्शनिक किर्केगार्द के चिन्तन से हुआ। किर्केगार्द हीगल के विचारों के विरोधी थे। उनके अनुसार केवल व्यक्ति सत्य है, कोई विचार या सिद्धान्त व्यक्ति से बड़ा नहीं है। कोई नियम मनुष्य की स्वतंत्रता से बड़ा नहीं है। मनुष्य के मन में परस्पर विरोधी विचार आते हैं। जिनसे मन में द्वन्द्व होता है। संघर्ष होता है, इसकी पीड़ा होती है। इस पीड़ा को वह सहन करता है। इसी पीड़ा से वह कुछ निर्णय लेता है। यह निर्णय उसकी स्वतंत्रता है। भय और वेदना से हमें अपने अस्तित्व का बोध होता है। तब हम मृत्यु का एहसास करते हैं। इस तरह किर्केगार्द इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि हमें अपने 'होने' का, अस्तित्व का बोध अपने भीतर से होता है। इसका तात्पर्य यह है कि अस्तित्ववाद के अनुसार सत्य आत्मगत होता है, वस्तुगत नहीं।

विद्वानों का विचार है कि किर्केगार्द की मृत्यु तक अर्थात 1855 ई. तक अस्तित्ववाद का कोई प्रभाव नहीं पड़ा था। उनकी मृत्यु के कई वर्षों बाद दार्शनिकों ने किर्केगार्द के महत्व को पहचाना। इनकी परम्परा में और अस्तित्ववादी दार्शनिक आए। इनमें कार्ल यास्पर्स, मार्टिन हाइडेगर, ज्याँ पाल सार्त्र, अल्बेयर कामू आदि मुख्य हैं।

इस अस्तित्ववाद की दो धाराएँ हैं। एक धारा ईश्वर के अस्तित्व को मानती है। अत: उन्हें आस्तिक अस्तित्ववादी कहा जाता है। दूसरी धारा नास्तिक है, जो ईश्वर के अस्तित्व को नहीं मानती। किर्केगार्द आस्तिक और सार्त्र नास्तिक अस्तित्ववादी माने जाते हैं।

पदार्थ और चेतना का द्वन्द्व दर्शन का प्रिय विषय रहा है। कुछ दर्शन इस तरह के अद्वैत मूलक सरलीकरणों से उबारने का काम करते हैं जो 'द्वैतवाद' को नई शक्ल में वापस ले आते हैं। 'नई शक्ल' का मतलब यह है कि ये दर्शन पदार्थ और चेतना को एक-दूसरे का उत्पाद मानते हुए यह भी कहते हैं कि जब दोनों, जब एक दूसरे से रिश्ता बनाते हैं, तो दोनों 'अपने आप में' वस्तुगत-यथार्थ होते हैं। दोनों की 'अपने तौर पर' एक स्वायत्त सत्ता होती है। इस आत्म-स्वायत्तता से दोनों के बीच 'अन्तर्विरोध' नजर आता है। यह अन्तर्विरोध, 'तनाव' और 'संघर्ष' को जन्म देता है। यह 'संघर्ष, पदार्थ और चेतना के बीच मौजूद 'रिश्तों' का 'निषेध' करता है। 'ये रिश्ते' बनाने के लिए 'समन्वय' तलाशता है। इस तरह मनुष्य, 'एक नई दुनिया बनाने की कोशिश करता रहता है। यहाँ यह समझना जरूरी है कि 'यथार्थ' अलग वस्तु है और 'दुनिया' अलग। दुनिया एक 'मनुष्य-निर्मित वस्तु' है, जबकि 'यथार्थ' एक प्रकृति प्रदत्त वस्तु। यथार्थ से नई दुनिया बनाने तक की यात्रा 'द्वन्द्वात्मक विकास' कहलाती है।

अस्तित्ववादियों का मानना है कि कुछ दार्शनिक पदार्थ को महत्व देते हैं, जबकि दूसरे चेतना को, परन्तु इन दोनों केन्द्रों के बीच, असल केन्द्र है- 'मनुष्य का केन्द्र', उस मनुष्य की चिंता अस्तित्ववाद करता है। कुछ विचारकों का मत है कि द्वन्द्वात्मक दर्शन के बिना अस्तित्ववाद का प्रकट होना संभव नहीं था। चेतना को महत्व देने के कारण हीगल आदर्शवादी दार्शनिक थे

जबकि पदार्थ को महत्व देने के कारण मार्क्स भौतिकवादी थे। दोनों द्वन्द्ववाद में विश्वास करते थे। अस्तित्ववाद इन दोनों का ही विरोधी है। हालाँकि ऐसा माना जाता है कि द्वन्द्वात्मक दर्शन न होते तो अस्तित्ववाद का प्रकट होना सम्भव नहीं था। हीगल के बाद जो अस्तित्ववाद सामने आया वह आस्तिक अस्तित्ववाद है। अस्तित्ववाद के जनक किर्केगार्द ने हीगल का विरोध किया।

अस्तित्ववादी दार्शनिक मार्टिन हाइडेगर ने अस्तित्ववाद के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए एक महत्वपूर्ण विचार-सूत्र प्रस्तुत किया। उनका मानना है कि अस्तित्ववाद से पहले पश्चिम में जितने भी दर्शन प्रकट हुए, उनमें से किसी में भी मनुष्य के 'होने' की बात केन्द्र में नहीं रही। जबकि सभी दर्शन 'मनुष्य' के लिए होते हैं। मनुष्य की अपने 'होने की चेतना' का भी विकास होता है। अत: वे इस इतिहास को 'वास्तविक' इतिहास मानकर अब तक के सभी पश्चिमी दर्शनों की पुनर्व्याख्या जरूरी मानते थे।

किर्केगार्द के बाद जर्मन दार्शनिक कार्ल यास्पर्स आए। उन्होंने अपने समय के समाज की आलोचना की और इस आलोचना के द्वारा अस्तित्ववाद को स्थापित किया। यास्पर्स ने यह सिद्ध किया कि बड़े-बड़े कल-कारखानों वाली वर्तमान सभ्यता एक रोग है। मनुष्य जितना ही विचारों को वस्तुगत कसौटी पर परखता रहा है, उतना ही मानव-अस्तित्व की वास्तविक विशेषता से वह दूर होता गया है। मनुष्य का चिन्तन यान्त्रिक हो गया है। इस यांत्रिकता ने मनुष्य के मन को कुचल डाला है। मनुष्य अपना बाह्य जीवन देखकर समझता है कि वह प्रगति कर रहा है; वास्तव में वह अपनी मूल आन्तरिक शक्ति का नाश कर रहा है। मनुष्य के लिए दो ही रास्ते हैं-या तो घमण्ड में आकर वह ईश्वर की सत्ता से इन्कार करे या अपना दुखी मन उसे समर्पित कर दे।

इन्हीं के समकालीन दार्शनिक मार्टिन हाइडेगर भी थे। उनके सिद्धान्त का सार-संक्षेप प्रस्तुत करते हुए डॉ. रामविलास शर्मा ने लिखा कि हाइडेगर के अनुसार मनुष्य जो देखता-सुनता है, वह वस्तुगत ज्ञान नहीं होता, उसकी इच्छा से प्रेरित वह आत्मगत ज्ञान होता है। किसी वस्तु को हम किस रूप में देखें, इसका निश्चय मन पहले ही कर लेता है। मनुष्य जिस संसार में जन्म लेता है, उसे वस्तुगत रूप से जान नहीं सकता; वह स्वयं को रूपों के मायालोक में खोया हुआ पाता है। यह मायालोक निरर्थक और निरुद्देश्य है किन्तु इसी में मनुष्य को जीना है; जीने के इस दायित्व से वह घुट-घुटकर रह जाता है। उसके लिए आवश्यक है कि वह इस सत्य से साक्षात्कार करे कि यह संसार निरुद्देश्य और निरर्थक है; वह स्वयं उद्देश्य निश्चित करके जीवन को सार्थक कर सकता है, निरर्थक बाह्य संसार को एक अर्थ दे सकता है। इस पद्धति से ही उसे अपने अस्तित्व का बोध हो सकता है, किन्तु इस प्रकार अपनी ओर से उद्देश्य निश्चित करना बहुत कम लोगों के लिए सम्भव होता है।

इनके पश्चात पाल सार्थक हुए। उन्होंने अस्तित्ववाद को मानववादी दर्शन के रूप में व्याख्यायित किया। उनका मत है कि मनुष्य जब पैदा होता है तब वह मानवीय नहीं बन पाता।

मानवीयता को उसे अर्जित करना पड़ता है, इसके लिए वह स्वयं अपनी इच्छा से उद्देश्य निश्चित करता है मानवीयता नाम की कोई ईश्वर-निर्मित वस्तु नहीं है। मनुष्य स्वयं इस ईश्वरहीन संसार में अपनी मानवीयता को स्वयं गढ़ता है। वह जब अपना उद्देश्य निश्चित करता है तब उसके द्वारा अपना हित ही नहीं करता वरन् उद्देश्य का निश्चित मानव मात्र के लिए हितकर होता है। अपने इस विराट दायित्वबोध के कारण ही उसे तीव्र वेदना का अनुभव होता है। मनुष्य का ज्ञान आत्मगत होता है इस आत्मगत ज्ञान से ही वह मूल्य-निर्धारण करता है। इसके अलावा मूल्य निर्धारण की कोई कसौटी नहीं है। मनुष्य संसार में अकेला है; अपने अलावा वह किसी पर निर्भर नहीं हो सकता। उसे अपना भाग्य स्वयं निर्मित करना है। मनुष्य की यह नियति है कि वह अपना उद्देश्य स्वयं निश्चित करे। उद्देश्य से प्रतिबद्ध होना आवश्यक है, प्रतिबद्ध न होकर वह अपने दायित्व से बचता है। मनुष्य जैसा निर्णय करेंगे, सामाजिक परिस्थिति वैसी ही होगी।



महत्वपूर्ण बिंदु

- अस्तित्ववाद के जनक किर्केगाद है।
- अस्तित्ववाद की दो धाराएँ हैं- आस्तिक और नास्तिक।

13.4 अस्तित्ववाद का विस्तार

आस्तिक अस्तित्ववादियों में मुख्य हैं, सोरेन कीर्केगार्द, फ्योदोर दोस्तोयवस्कीउ, कार्ल जेस्पर्स, पाल टिलिच, गोब्रियलन मार्सल, निकोलाई बर्डियत, अनामुनो डी जुगो और लेब्र गेस्तोव। जिन अस्तित्ववादियों को नास्तिक अस्तित्ववादी के रूप में देखा जाता है, उनमें मुख्य हैं, फ्रेडरिक नीत्शे, हररेल, हीडेगर, सार्त्र और सीमोन।

अस्तित्ववादी दर्शन का विस्तार-क्षेत्र कुछ ऐसे देश हैं, जिनका सम्बन्ध उल्लेखनीय अस्तित्ववादी चिन्तकों-रचनाकारों से है-

1. जर्मनी- कार्ल जेस्पर्स, मार्टिन हीडेगर
2. फ्रांस- ग्रेब्रियल मार्शल, ज्याँ गैहल, सार्त्र, अल्बेयर कामू
3. स्पेन- जोस ओरतेगा वाई गैसट, मिगुएल दे अनामुनो
4. रूस- निकोलाई वर्डियेत, लेव शेस्तोत
5. भारत- हिन्दी रचनाकारों में स.ही. वात्स्यायन अज्ञेय, निर्मल वर्मा आदि।

रचनाकारों के रूप में इस धारा से सम्बद्ध लोगों के कुछ उल्लेखनीय नाम हैं - इब्सन, काफ्का, कामू, ज्याँ जे ऐन्द्रे जीड, सैमुअल बार्कले बेकेट, एडवर्ड एल्बी, यूजीन आयनेस्को।

13.5 अस्तित्वाद का स्वरूप

अस्तित्ववाद एक 'मनुष्य' केन्द्रित व 'जीवन' केन्द्रित चिन्तन-पद्धति है, जो द्वैतवादी अथवा द्वन्द्वात्मक है। इस दर्शन में मनुष्य, उसके जीवन और उसके अस्तित्व की चेतना के साथ पदार्थ, दुनिया, इतिहास, समय और विचारधारा के रिश्तों की व्याख्या की जाती है। इसमें इस बात की खोज की जाती है कि कैसे ये रिश्ते मनुष्य के अस्तित्व को एक 'अर्थपूर्ण व मूल्यवान तरीके से होने' में बदलते हैं। कहा जा सकता है कि इस दर्शन में 'अस्तित्व' से अर्थपूर्ण रूप में 'होने' तक का सफर तय किया जाता है। ज्याँ पाल सार्त्र इसे 'अस्तित्व के सारभूत होने' के रूप में परिभाषित करते हैं। इस बारे में उनका प्रसिद्ध कथन यह है कि 'मनुष्य का अस्तित्व पहले होता है, फिर बाद में उसका होना सारगर्भित होता है।' इस आधार पर फ्रेडरिक कौपलर अस्तित्व को ही एक 'सार-मूलक' दर्शन का नाम देते हैं।

फ्रेडरिक क्रिश्चियन के मुताबिक अस्तित्व को 'जीवन-मूलक' दर्शन मानना चाहिए; क्योंकि 'जीवन' मनुष्य के होने का परम-मूल्य है। जबकि स्टीवन क्रावेल के अनुसार, अस्तित्ववाद एक निषेधमूलक दर्शन है, जो ज्ञान के तमाम रूपों को खारिज करता है और तब कहीं जाकर मनुष्य के 'होने' के लिए 'जगह' बनाता है।

13.6 अस्तित्ववाद

अस्तित्ववाद मानव केंद्रित दृष्टिकोण हैं अर्थात् वह सम्पूर्ण जगत में मानव को सबसे अधिक महत्व प्रदान करता है, उसकी दृष्टि में मानव एकमात्र साध्य है। प्रकृति के शेष उपादान 'वस्तु' है।

मानव का महत्व उसकी 'आत्मनिष्ठता' में है न कि उसकी 'वस्तुतनिष्ठता' में। विज्ञान, तकनीक के विकास और बुद्धिमवादी दार्शनिकों ने मानव को एक 'वस्तु' बना दिया है, जबकि मानव की पहचान उसके अनूठे व्यक्तित्व के आधार पर होनी चाहिए।

सार्त्र के अनुसार मनुष्य स्वतंत्र प्राणी है। यदि ईश्वर का अस्तित्व होता तो वह संभवत: मनुष्य को अपनी योजना के अनुसार बनाता। किंतु सार्त्र का दावा है कि ईश्वर नहीं है, अत: मनुष्य स्वतंत्र है।

स्वतंत्रता का अर्थ है- चयन की स्वतंत्रता। मनुष्य के सामने विभिन्न स्थितियों में कई विकल्प उपस्थित होते हैं। स्वतंत्र व्यक्ति वह है जो उपयुक्त विकल्प का चयन अपनी अंतरात्मा के अनुसार करता है, न कि किसी बाहरी दबाव में। कीर्केगार्द ने कहा भी है कि 'महान से महान व्यक्ति की महानता भी संदिग्ध रह जाती है, यदि वह अपने निर्णय को अपनी अंतरात्मा के सामने स्पष्ट नहीं कर लेता'।

1940 व 1950 के दशक में अस्तित्ववाद पूरे यूरोप में एक विचारक्रांति के रूप में उभरा। यूरोप भर के दार्शनिक व विचारकों ने इस आंदोलन में अपना योगदान दिया है। इनमें

ज्यां-पाल सार्त्र, अल्बर्ट कामू व इंगमार बर्गमन प्रमुख हैं। कालांतर में अस्तित्ववाद की दो धाराएं हो गईं-

1) ईश्वरवादी अस्तित्ववाद और

2) अनीश्वरवादी अस्तित्ववाद

अस्तित्ववादी विचार या प्रत्यय की अपेक्षा व्यक्ति के अस्तित्व को अधिक महत्व देते हैं। इनके अनुसार सारे विचार या सिद्धांत व्यक्ति की चिंतना के ही परिणाम है। पहले चिंतन करने वाला मानव या व्यक्ति अस्तित्व में आया, अत: व्यक्ति अस्तित्व ही प्रमुख है, जबकि विचार या सिद्धांत गौण। उनके विचार से हर व्यक्ति को अपना सिद्धांत स्वयं खोजना या बनाना चाहिए, दूसरों के द्वारा प्रतिपादित या निर्मित सिद्धांतों को स्वीकार करना उसके लिए आवश्यक नहीं। इसी दृष्टिकोण के कारण इनके लिए सभी परंपरागत, सामाजिक, नैतिक, शास्त्रीय एवं वैज्ञानिक सिद्धांत अमान्य या अव्यावहारिक सिद्ध हो जाते हैं। उनका मानना है कि यदि हम दु:ख एवं मृत्यु की अनिवार्यता को स्वीकार कर लें तो भय कहाँ रह जाता है।

अस्तित्ववादी के अनुसार दु:ख और अवसाद को जीवन के अनिवार्य एवं काम्य तत्वों के रूप में स्वीकार करना चाहिए। परिस्थितियों को स्वीकार करना या न करना व्यक्ति की ही इच्छा पर निर्भर है। इनके अनुसार व्यक्ति को अपनी स्थिति का बोध दुःख या त्रास की स्थिति में ही होता है, अत: उस स्थिति का स्वागत करने के लिए प्रस्तुत रहना चाहिए। दास्ताएवस्की ने कहा था- ''यदि ईश्वर के अस्तित्व को मिटा दें तो फिर सब कुछ (करना) संभव है।''

अस्तित्ववाद 'अस्तित्व' में 'अस्ति' होने का बोध कराता है। यों तो पेड़-पौधे, पशु-पंछी आदि सभी का अस्तित्व होता है। किंतु अस्तित्ववादी अर्थ में मनुष्य का ही अस्तित्व को स्वीकारा गया है। व्यक्ति की 'वैयक्तिकता' या 'यूनिकनेस' अस्तित्ववाद का केंद्रीय विवेच्य है। सात्र के अनुसार, गुण के पहले अस्तित्व होता है। वे कहते हैं - 'मनुष्य पहले अस्तित्व में आता है, आत्मसंघर्स करता है, दुनिया से टकराता है और अपने को परिभाषित करता है।'

अस्तित्ववादी दर्शन में अनेक विषयों का विवेचन किया गया है, जैसे- स्वतंत्रता, चुनाव, संवेदना, समाज आदि। पर इन सभी की केंद्रीय मुद्दा व्यक्ति ही है।

सार्त्र का कहना है कि मनुष्य स्वतंत्र होने के लिए अभिशप्त है। अत: स्वतत्रंता 'होने' की बुनियादी शर्त है। स्वतंत्र होकर ही प्रामाणिक जीवन जीया जा सकता है। कामू 'विद्रोह' को स्वतंत्रता का पर्याय कहता है - 'मैं विद्रोह करता हूं इसलिए अस्तित्ववान हूँ।'

13.7 अस्तित्ववाद की प्रमुख प्रवृत्तियाँ एवं विशेषताएँ

सार्त्र का प्रसिद्ध वाक्य है-' अस्तित्व सार का पूर्ववर्ती है।' सन् 1946 में प्रकाशित अपने प्रसिद्ध निबन्ध में उन्होंने 'अस्तित्व' को 'मानववादी दर्शन' का नाम देते हुए स्पष्ट किया कि अस्तित्व तो सभी का होता है, पर वह चरितार्थ तब होता है, जब हम अपने 'होने' के अर्थ और

मूल्य को खोज लेते हैं। मनुष्य के अस्तित्व का सार अनुभवमूलक होता है, न कि चिन्तन-मूलक। यानी यह अनुभववादी दर्शन है। वास्तविक मनुष्य होने के सूत्र 'जीवनानुभव' में छिपे होते हैं। पश्विासमी दर्शनों में, रेने देकार्त के शब्दों में व्यक्ति (सब्जेक्ट) की व्याख्या, 'एक चिन्तनशील प्राणी' की तरह की जाती है। 'सोचने' का सम्बन्ध 'व्यक्ति' के 'नियन्त्र क अहं' (कार्टिसिज्म) ईगो से होता है। वह व्यक्ति को 'सोच की प्रणालियों' से बाँधता है। जीवनानुभव, एक समग्र-अनुभव है, जिसमें इन्द्रिय तो भाव, विचार, अचेतन प्रवृत्तियाँ एवं आध्यात्मिक अनुभव तक एक होते हैं; एक साथ घटित होते हुए। अस्तित्ववादी इसे ही विवेचनीय मानते हैं। अत: उनका दर्शन 'अनुभववादी' होता है; तत्वीमीमांसी या ज्ञानमीमांसी नहीं।

वास्तविक मनुष्य का अनुभव सारगर्भी तब होता है, जब वह स्वतन्त्र रूप में चुनाव करता है। स्वतन्त्र चुनाव का अर्थ है-निर्धारित पद्धति का कार्य करने से इनकार। मानवजाति द्वारा अब तक जितनी ज्ञान सम्पादा अर्जित की गई है, वह हमारे 'वर्तमान में कार्य करने' के लिए दिशा-निर्देशक का काम करती है। धर्म, राजनीति, परिवार, संस्थाएँ जैसी समाज की सत्ता संरचनाएँ - उस ज्ञान-परिपाटी को 'व्यक्ति की नियति' बना देती हैं। जबकि वास्तविक रूप में मनुष्य होने के लिए जरूरी है कि हम केवल 'अपने स्वतन्त्र चुनाव' को ही अपनी नियति बनाएँ। नियत ज्ञान-परम्पराएँ, व्यक्ति को 'तथ्यपरकता' प्रदान करती हैं।

सामान्य रूप में समाज का दबाव यह होता है कि व्यक्ति 'तथ्यपरक' रूप में जिए। तथ्यपरक रूप में जीने का अर्थ है- हमारा 'जन्म' जहाँ, जैसे, जिस सामाजिक कोटि में हुआ है, हम उसके अनुसार जिएँ। इसका दूसरा अर्थ यह है कि हम 'स्मृतियों' को उनके व्यवहार की कसौटी बनाएँ। स्मृतियों पर समाज का जोर इसलिए होता है, क्योंकि वह हमारे और परम्परा के बीच 'पुल' होती है। तथ्यपरक तरीके से जीने का तीसरा अर्थ है कि हम अपने 'उत्तम पुरुष' वाले रूप को 'अन्य पुरुष' के आईनों में ढालें। हम, जैसा चाहते हैं, वैसा नहीं; अपितु हमसे लोग जैसा चाहते हैं; वैसा जीयें। तथ्यपरक ज्ञान, खुद का ज्ञान न होकर, 'अन्यों' के सम्बन्ध में पाया गया ज्ञान होता है। वैज्ञानिक चिन्तन के तहत इसे 'वस्तुनिष्ठता' कहते हैं। अस्तित्ववादी चिन्तन, खुद अपने होने से 'अर्थपूर्ण तरीके से होने' तक का सफर है। आत्मनिष्ठ ज्ञान भी जब सबकी 'साझी आत्मनिष्ठता' का ज्ञान बनता है, तो वह वस्तुनिष्ठ ज्ञान ही कहलाता है। तब हमें यह समझने की कोशिश करनी पड़ती है कि जब हम 'दूसरों' की जगह 'खुद' को रख कर देखते हैं, तो हम दूसरों के जरिए भी खुद को पा सकते हैं। इस तरह देखा जाए तो अस्तित्ववादी दर्शन, 'दूसरों' के विरोध में नहीं है। पर वह दूसरों के भीतर भी, 'अपनी' तलाश करने पर जोर देता है।

तथ्यपरक/अन्यपरक/वस्तुनिष्ठ ज्ञान के भीतर से, जब कोई 'स्वयं' को खोजता और देख पाता है, तो वह एक 'प्रामाणिक' व्यक्ति हो जाता है।

अस्तित्ववाद, वैज्ञानिक चिन्तन के विरोध में नहीं है। सार्त्र ने 'मार्क्सवाद' और 'अस्तित्ववाद' को एक-दूसरे का पूरक माना है। वंचित समाज के प्रति 'प्रतिबद्धता' अगर किसी 'प्रामाणिक मनुष्य का अपना चुनाव' है; तो वह प्रतिबद्ध होकर भी दरअसल खुद को, अपने होने

के अर्थ को, ही खोज रहा होता है।

अस्तित्ववाद परम्परा विरोधी 'अराजक' दर्शन नहीं है; जैसा कि आम तौर पर, अनेक लोगों का इस दर्शन के सम्बन्ध में 'गलत मत' स्थापित हो गया है। इस सन्दर्भ में सार्त्र ने स्पष्ट किया है कि 'जब कोई मनुष्य अपने लिए स्वतन्त्र रूप में चुनाव करता है, तो दरअसल वह अपने इस चुनाव के द्वारा 'पूरी मानवजाति के लिए चुनाव' कर रहा होता है। धर्म के सन्दर्भ में भी, इसीलिए अस्तित्ववाद स्वयं चुनाव करने की स्वतन्त्रता पर बल देता है। अस्तित्ववाद की दो कोटियाँ हैं- आस्तिक अस्तित्ववाद और नास्तिक अस्तित्ववाद। चयन की स्वतन्त्रता व्योक्ति की है। चुनाव पर निर्भर है। शर्त इतनी है कि यह चुनाव उसके 'होने को विवेकपूर्ण अर्थ' प्रदान करने वाला हो।

स्वतन्त्र चुनाव के आधार के लिए सार्त्र का मत है कि नैतिक या धार्मिक मूल्य अगर स्वतन्त्रता को बाधित करते हों तो 'स्वतन्त्रता' को 'परम-मूल्य' मानना चाहिए। परन्तु इससे अराजकता फैल जाएगी। क्योंकि नैतिक मूल्य समाज का संचालन करते हैं और अगर हर व्यक्ति स्वतन्त्रता की रक्षा करेगा, तो नैतिकता का क्या मापदण्ड होगा ? ये सवाल अस्तित्ववादी चिन्तन की केंद्रीय समस्या है। इनका उत्तर इस प्रकार है–

सामान्य नैतिक मूल्य या नैतिकताएँ, समाज को नियन्त्रित करने की व्यवस्था होती है। जबकि स्वतन्त्रता को परम-मूल्य मानने वाले, अपना नैतिक-बोध स्वयं रचते हैं।

नैतिक रूप में कुछ भी अच्छा या बुरा नहीं होता। स्वतन्त्रता का हनन बुरा है और उसकी रक्षा अच्छी बात है।

चूँकि स्वतन्त्र चुनाव, व्यक्ति को 'अपने लिए' व अपनी मार्फत 'पूरी मानव-जाति के लिए' दायित्व-बोध से युक्त करता है, इसलिए स्वतन्त्रता को चुनने पर व्यक्ति अराजक व अनैतिक नहीं होता। अपने लिए जिम्मेदार होना, जीवन के प्रति जिम्मेदार होना है। कुछ करने के लिए चयन की आजादी, 'कर्म के फल' के लिए अपनी जिम्मेदारी स्वीकार करना है। चुनाव और कर्म-फल के लिए व्यक्ति जैसे ही खुद को जिम्मेदार बनाता है; वह 'अकेला' पड़ जाता है। अकेले पड़ जाने का अर्थ है, 'भीड़ को नियन्त्रित करने वाली नैतिकता की दुनिया' से अलग होकर, 'अपने' दायित्व-बोध के अनुसार, एक 'वैकल्पिक दुनिया' रचने की तैयारी करना। परन्तु दुनिया को चूँकि स्वीकृत परम्परागत मूल्यों के अनुसार चलने की आदत होती है। इसलिए 'अकेले' पड़ गया व्यक्ति, अपनी 'वैकल्पिक दुनिया' को भी सच होता हुआ नहीं देख पाता। इससे उसमें 'अस्तित्वगत निराशा' पैदा होती है। यह एक तरह का 'मृत्युबोध' होता है, जो हर समय व्यक्ति को 'मितली' (नौसिया) की हालत में बनाए रखता है। इससे व्यक्ति में व्यर्थता-बोध का संचार होता है और वह 'आत्मा की अन्धेरी रात' से खुद को घिरा पाता है। अस्तित्ववादी इसे 'अलगाव' या 'अजनबीपन' की स्थिति का पर्याय मानते हैं।

स्वतन्त्रता के साथ, दायित्वबोध से युक्त होकर जो व्यक्ति आत्म-प्रतिबद्धता की कठिन राह पर बना रहता है, वह अन्ततः इसी आत्म-संघर्ष से अपने होने का 'मूल्य' हासिल करता है।

परन्तु यह ऐसा मूल्य होता है, जिसके लिए व्यक्ति को हमेशा संघर्षरत रहना पड़ता है। 'होने का अर्थ' लगाव 'होते रहने' के रूप में पाया जाता है; जो नैतिक मूल्यों की तरह स्थिर या निश्चित नहीं होता।



अपनी प्रगति जांचें

प्रश्न 1. ईश्वरवादी अस्तित्ववाद और अनीश्वरवादी अस्तित्ववाद पर अपना विचार प्रकट कीजिए।



13.8 सारांश

अस्तित्ववाद का प्रारम्भ जर्मनी दार्शनिक किर्केगार्द के चिन्तन से हुआ। यह मूलत: एक विचार है, जिसमें मुख्य रूप से मनुष्य के अस्तित्व को महत्व दिया गया है। अस्तित्ववाद मूलत: दो प्रकार के हैं- आस्तिक अस्तित्ववाद (किर्केगार्द आदि का) तथा नास्तिक अस्तित्ववाद (सार्त्र आदि का)। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि अस्तित्ववादी दर्शन में विभिन्न विषयों पर चर्चा हैं, लेकिन जिसके मूल में व्यक्ति प्रधान है, व्यक्ति के अस्तित्व प्रधान है।



13.9 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न 1 का उत्तर : अस्तित्ववादी विचार या प्रत्यय की अपेक्षा व्यक्ति के अस्तित्व को अधिक महत्व देते हैं। इनके अनुसार सारे विचार या सिद्धांत व्यक्ति की चिंतना के ही परिणाम है। अधिक जानने के लिए 'अस्तित्ववाद' को ध्यानपूर्वक पढ़ें।



13.10 अधिक जानने के लिए पढ़े

1. डॉ. श्यामसुन्दर मिश्र- अस्तित्वाद और साहित्य, पंचशील प्रकाशन, जयपुर।
2. योगेन्द्र शाही- अस्तित्ववाद : किर्केगार्द से कामू तक, ग्रन्थलोक, दिल्ली।
3. ज्यां पॉल सार्त्र, (अनुवाद : जे. पारीख) - अस्तित्ववाद और मानववाद, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली।
4. रूबिचेक पाल (अनुवाद : प्रभाकर माचवे) - अस्तित्ववाद- पक्ष और विपक्ष, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल।



13.11 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रश्नों के उत्तर लिखिए :

1. नास्तिक अस्तित्ववाद क्या है ?
2. किसने अस्तित्ववाद को मानववादी दर्शन के रूप व्याख्यायित किया है ?
3. दो आस्तिक अस्तित्ववादियों का नाम उल्लेख कीजिए।

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए :

1. अस्तित्ववाद से आप क्या समझते हैं ? इसके विकास पर एक आलेख प्रस्तुत कीजिए।
2. अस्तित्ववाद के प्रवर्तक किसे माना जाता है ? अस्तित्ववाद के अवधारानाओं को स्पष्ट कीजिए।
3. अस्तित्ववाद के प्रमुख विशेषताओं को उल्लेख कीजिए।

*** ***** ***

इकाई 14 : समकालीन अवाधारानाएँ

इकाई की रूपरेखा

14.1 उद्देश्य
14.2 प्रस्तावना
14.3 नयी समीक्षा
14.4 फंतासी या फैंटेसी
14.5 मिथक
14.6 प्रतीक
14.7 बिम्ब
14.8 सारांश
14.9 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)
14.10 अधिक जानने के लिए पढ़े
14.11 अभ्यास प्रश्न

14.1 उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के उपरांत आप-

- नयी समीक्षा के विचारों एवं विशेषताओं को जान पाएंगे।
- फंतासी के अर्थ, विशेषताओं से अवगत होंगे।
- मिथक के परिभाषा एवं विशेषताओं से परिचय प्राप्त करेंगे।
- प्रतीक का अर्थ एवं भेद को जान पाऐंगे।
- बिम्ब का अर्थ एवं तत्वों के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।

14. 2 प्रस्तावना

नयी समीक्षा की शुरुआत पहले-पहल अंग्रेजी साहित्य में हुई। नयी समीक्षा बीसवीं शताब्दी में आंग्ल-अमेरिकी साहित्य में आलोचना की एक प्रमुख प्रवृत्ति के रूप में उभरी। नयी समीक्षा में किसी रचना के ऐतिहासिक और सामाजिक पक्ष पर विचार करने को अनावश्यक माना गया। रचना से हटकर रचनाकार पर जोर देने का भी विरोध किया गया। नयी समीक्षा के अनुसार किसी भी कृति का रचना-समय और परिवेश को हटाकर मूल्यांकन किया जाना चाहिए।

पुराकथाओं का वह तत्व जो नवीन स्थितियों में नए अर्थ का वहन करे, मिथक कहलाता है। मिथक शब्द अंग्रेजी के मिथ का हिन्दी रूप है। मिथक का जन्म मानव के

सामाजिक जीवन के क्रियाकलापों, प्रथाओं, रीति-रिवाजों, घटनाओं या अन्य किसी तथ्य के रहस्योद्घाटन के उद्देश्य से हुआ। मिथकीय रचनाधर्मिता सृजनात्मक धरातल पर अतीत के सन्दर्भ-सूत्रों में वर्तमान के लिए सुव्यवस्थित फलक निर्मित करती है और भविष्य के लिए पथ-प्रदार्शित करती है। मिथक मनुष्य की सामूहिक चेतना की उपज है और बिम्ब व्यक्ति-चेतना की। बिम्ब की स्वीकृति के लिए भी सामूहिक चेतना के पास जाना पड़ता है। मिथक अनेक आद्य प्रतीकों का गुच्छा होता है, केवल एक प्रतीक से उसकी सृष्टि नहीं हो सकती। बिम्ब-निर्माण में पहली स्थिति है कवि और वणर्य-वस्तु का तदाकार हो जाना और इस तदाकारिता के लिए कवि में वस्तुनिष्ठता, एन्द्रिय- बोध और भावोद्रेक के साथ-साथ कल्पना-शक्ति का होना आवश्यक है। कल्पना से बिम्ब जन्म लेता है और बिम्बों से प्रतीक का आविर्भाव होता है। जब कल्पना मूर्त रूप धारण करती है, तब बिम्ब की सृष्टि होती है और जब बिम्ब व्युत्पन्न अथवा बार-बार प्रयुक्त होने से किसी निश्चित अर्थ में निर्धारित हो जाता है, तब प्रतीक का निर्माण होता है।

14.3 नयी समीक्षा

नयी समीक्षा शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम स्पिनगार्न ने सन् 1911 ई. में किया, पर उसकी परिभाषा देने का श्रेय जॉन क्रोरेन्सम को है, जिन्होंने अपनी पुस्तक The New Criticism में उसकी व्याख्या की। यही से 'नयी समीक्षा' प्रतिष्ठित हुई। इनके अतिरिक्त एलेनटेट, रॉबर्ट पेन वारेन, आर. पी. ब्लेकमर, आइवर विंटर और क्लीन्थ ब्रुक्स नये समीक्षकों में अग्रणी है। यद्यपि इन समीक्षकों में भी कई बातों पर मतभेद हैं किन्तु एक बात पर सब सहमत है कि 'काव्य स्वत: वस्तु है। 'या 'काव्य पूर्णत: स्वायत्त भाषिक संरचना है।'

नयी समीक्षा को प्रेरणा और बल प्रदान करने का कार्य सर विलियम एम्पसन की समीक्षा कृति 'सेवन टाइप्स ऑफ एम्बिगुयिटी' 1930 ई. ने किया। नयी समीक्षा के विचारों को निम्न बिन्दुओं द्वारा समझा जा सकता हैं -

- नयी समीक्षा एक आन्दोलन है, जिसमें किसी भी कृति की समीक्षा, कृति के आधार पर किए जाने का आग्रह है। जहाँ शास्त्रवादी, मनोविज्ञानवादी, अस्तित्ववादी आन्दोलन कृतिकार को अधिक महत्व देते हैं, वही नयी समीक्षा में कृति को विशेष महत्व दिया जाता है।
- नये समीक्षकों ने स्वच्छंदतावादी प्रवृत्तियों का विरोध किया तथा अव्यवस्थित, पलायनवादी, क्षीण तथा भावुकता का भी तिरस्कार किया।
- नयी समीक्षा में कृति की रूप-रचना पर विचार किया गया। कृति की शब्दावली, शब्दों की बुनावट, शब्दों की पच्चीकारी, अर्थ का ढाँचा, शब्दार्थगत श्लेष, सन्देह, विरोधाभास, भावावेग अर्थ निर्वाह, अलंकृति आदि बातों पर नयी समीक्षा में विचार किया गया है।
- नये समीक्षकों ने साहित्य के पुनर्मूल्यांकन का साहस भी किया और परम्परा के संदर्भ में जीवन के मूल्यों पर पुनर्विचार भी किया।

- नयी समीक्षा के युग में वैज्ञानिक आधार पर आलोचना की गई। चयन, विचलन, सादृश्यता आदि के द्वारा कृति की विशिष्टता का प्रतिपादन किया गया।
- नयी समीक्षा कलाकृति की अखण्डता को स्वीकार करती है। कृति के विचार पक्ष और वस्तु पक्ष को अलग-अलग करके नहीं देखा जा सकता। दोनों मिलकर ही उसे कृति बनाते हैं।
- नयी समीक्षा रचना को शुद्ध रूप में देखने के पक्ष में है। उसके अनुसार काव्य भाषा का विशेष महत्व है। नयी समीक्षा वस्तुतः एक दृष्टिकोण ही है, कोई नया सिद्धांत नहीं।
- नयी समीक्षा में आलोचक सर्वप्रथम रचना का वाक्यार्थ प्रस्तुत करता हैं, उसके पश्चात् वह पाठ विश्लेषण की पद्धति अपनाते हुए रचना में नियोजित शब्द, अर्थ तथा लय के कलात्मक प्रयोगों का विश्लेषण करता है।
- नयी समीक्षक शब्द विधान की बारीकियों को दिखलाते हुए यह बताता है कि शब्दों का रमणीय प्रयोग किस प्रकार अभीष्ट अर्थ की व्यंजना करता है।

नयी समीक्षा की मूल विशेषताएं निम्नलिखित हैं-

1. काव्य भाषिक संरचना मात्र है, इसलिए भाष के सर्जनात्मक तत्वों का विश्लेषण ही समीक्षा का मुख्य धर्म है।
2. ऐतिहासिक, समाजशास्त्रीय, दार्शनिक और मनोविश्लेषणवादी समीक्षाएं अप्रासंगिक हैं।
3. आस्वाद और सम्प्रेषण के प्रश्न पर विचार करना व्यर्थ है।
4. रचना के भाषिक विश्लेषण के लिए उसका गहन पाठ आवश्यक है।

इस प्रकार नई समीक्षा की प्रक्रिया तीन बातों पर आधारित हैं -

- रचना का वाक्यार्थ प्रस्तुत करना।
- शब्द-विधान की बारीकियों को दिखलाकर कवि-कौशल पर प्रकाश डालना।
- शब्द-विधान का अर्थ-विधान के साथ समन्वय करते हुए रचना के मूल अर्थ को प्राप्त करना।

इस प्रकार नयी समीक्षा ने साहित्य की स्वायत्त सत्ता प्रतिष्ठित की और इस बात पर बल दिया कि साहित्य का अपना माध्यम है और उसका प्रयोजन भी सामाजिक मनोरंजन करना या उसका चरित्रोत्कर्ष करना न होकर अपना निजी प्रयोजन है। नयी समीक्षा काव्य के अनुभव को प्रत्यक्ष, गोचर और तात्कालिक मानती है। इससे काव्य की परिधि से शाश्वत, सार्वभौम, चिरन्तन, सूक्ष्म भावों एवं विचारों को निष्कासित कर दिया जाएगा।

14.4 फंतासी या फैंटेसी

फैंटेसी शब्द का निर्माण यूनानी शब्द 'फैंटेसिया' से हुआ है, जिसका अर्थ है- 'मनुष्य की वह क्षमता जो संभावित संसार की सर्जना करती है।' प्लेटो ने कल्पना के लिए 'फैंटेसिया' शब्द का प्रयोग किया था, जिसका आधार असत्य या मिथ्या होती है। ऐसी कल्पना जो तर्क-

सिद्ध नहीं है और एक प्रकार की रहस्यात्मक अन्तर्दृष्टि का परिणाम है, फैंटेसी कही जा सकती है।

कल्पना में पुनर्सर्जन करने की शक्ति होती है। वह प्रत्यक्ष रूप-विधान को परिवर्तित, संघटित और समन्वित करके नई सृष्टि कर सकती है। फैंटेसी में यह क्षमता नहीं होती। वह असम्बद्ध स्मृति-बिम्बों के सहारे एक रहस्य लोक का निर्माण कर सकती है। उसका देशकाल सर्वथा अपरिचित और रहस्यमय होता है।

हिन्दी में 'फैंटेसी' का सबसे अधिक प्रयोग गजानन माधव मुक्तिबोध ने किया। उनके अनुसार- 'फैंटेसी में मन की निगूढ़ वृत्तियों का, अनुभूत जीवन समस्याओं का और इच्छित जीवन-स्थितियों का प्रक्षेप होता है। यहाँ कल्पना का मूल कार्य मन के निगूढ़ तत्वों को प्रोद्भासित करते हुए विभिन्न रंगों में उन्हें अपने समस्त सौन्दर्य के साथ उद्घाटित करता रहता है।'

फैंटेसी के संबंध में निम्न बातें मान्य हैं-

- फैंटेसी भी एक तरह की कल्पना ही है किन्तु कवि की रचनात्मक कल्पना से इसका स्वरूप भिन्न होता है। इसमें मनोबिम्बों को समन्वित, संघटित और और परिवर्तित करके नवीन रचना की शक्ति नहीं होती।
- फैंटेसी में आने वाली बिम्बवलियाँ बेतरतीब और विश्रृंखलित होती है। उनकी स्थिति स्वप्नबिम्बों जैसी होती है।
- फैंटेसी में जीवन का वास्तविक यथार्थ रूपायित नहीं हो पाता किन्तू तकनीक के रूप में फैंटेसी का प्रयोग करके जीवन यथार्थ के बिम्ब प्रस्तुत किए जा सकता है।
- फैंटेसी का संबंध रचनाकार के अवचेतन मन से होता है। इसलिए इसमें रचनाकार के मन के निगूढ़ तत्वों की झलक मिल जाती है।

फैंटेसी की निम्न विशेषताएँ हैं -

1. फैंटेसी में मन के निगूढ़ तत्व उद्भासित होते हैं।
2. अनुभूत जीवन समस्याएं प्रक्षेपित होती है।
3. इच्छित जीवन स्थितियाँ अर्थात जैसी जीवन-स्थितियों की हम कामना करते हैं, वे भी इसमें प्रक्षेपित होती है।

फैंटेसी एक प्रकार की साहित्यिक तकनीक है, जिसका संबंध मनुष्य के स्वप्न और अवचेतन मन में घटित होने वाली घटनाओं की ऐसी बिम्बावलियों से है, जो विघटित एवं बेतरतीब होती है। मुक्तिबोध की कविताओं 'ब्रहाराक्षस' एवं 'अँधेरें में' में फैंटेसी का प्रयोग किया गया है। मुक्तिबोध ने 'कामायनी' को भी एक फैंटेसी माना है।

14.5 मिथक

'मिथक' शब्द हिन्दी में अंग्रेजी के 'मिथ' शब्द के लिए प्रचलित है। अंग्रेजी में भी यह मूलतः यूनानी शब्द 'माइथोस' (Muthos) से आया है। 'माइथोस' का अर्थ है ऐसा आख्यान

जिसमें कोई तर्क न हो। 'माइथोस' का विलोम है 'लागोस' अर्थात तार्किक संलाप। मिथक के लिए दंतकथा, पुरावृत्त, पुराकथा जैसे शब्द भी प्रयुक्त होता है। साहित्य के अतिरिक्त मनोविज्ञान और समाजशास्त्र के क्षेत्र में भी मिथक की व्याख्या की जाती है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार 'मिथक' का मूलाधार आदिम मनुष्य की दमित यौन भावनाएँ हैं, जिन्हें वह कथात्मक प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त करता है। समाजशास्त्रियों की दृष्टि में सामाजिक जीवन की आशा-आकांक्षा ही प्रक्षेपित होकर प्रतीकात्मक पुराकथा का रूप ले लेती है।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार- 'मिथक वस्तुत: उस सामूहिक मानव की भाव-निर्मात्री शक्ति की अभिव्यक्ति है, जिसे कुछ मनोविज्ञानी 'आर्किटाइपल इमेज' कहकर संतोष कर लेते हैं।' संस्कृत में 'मिथ' शब्द का अभिप्राय प्रत्यक्ष-ज्ञान के लिए भी होता है तथा दो तत्वों के परस्पर सम्मिलन के लिए भी।

अरस्तु ने अपने ग्रंथ पोएटिक्स में मिथक का प्रयोग कथानक, आख्यानमूलक रचना तथा मनगढंत कथा के लिए किया है। होमर के 'इलियड' और 'ऑडेसी' महाकाव्य तथा शेक्सपियर के 'हैमलेट' तथा 'किंग लियर' में मिथक का प्रयोग हुआ है। हिन्दी में प्रसाद की 'कमायनी', धर्मवीर भारती का 'अंधा युग' इसके अतिरिक्त 'कनुप्रिया', 'एक कण्ठ विषपायी', 'संशय की एक रात' आदि मिथकों पर आधारित रचनाएँ हैं। मिथक आदि मानव की कल्पना सृष्टि है। वह उसके जीवन का यथार्थ है। आज का यथार्थ है। आज भी किसी न किसी रूप में यह आदिमानव हमारे भीतर विद्यमान है। मिथक और मिथकीय प्रतीकों की व्याख्या किए बिना हम कविता के मर्म तक नहीं पहुँच सकते। इसलिए कुछ मनोविज्ञान कुछ समाजशास्त्र से शक्ति और प्रेरणा लेकर इनकी व्याख्या की जाती है। ऐसी समीक्षा, जो इसी पद्धति से मिथकीय रचनाओं का विवेचन करती है 'मिथकीय समीक्षा' कही जा सकती है।

मिथकों में ऐसे कई तत्व होते हैं, जो साहित्य में ग्रहण किए जाते हैं। जैसे अतिप्राकृत तत्व, आख्यान, अनुष्ठान, बिम्ब और प्रतीक आदि। मिथक की निम्न विशेषताएँ मानी गई हैं-

- यह लोक प्रसिद्ध मनगढ़न्त या पौराणिक कथा होती है।
- इसकी घटनाएं बिना तर्क के स्वीकार कर ली जाती है।
- इसमें विस्मयपूर्ण एवं कौतूहलपूर्ण घटनाएं होती है।
- यह अनेक आद्य बिम्बों का गुच्छा होता है।
- यह लोक विश्वास पर आधारित होता है।
- मिथक के क्रियाकलाप और कथा मानवेतर विशेषत: देवताओं से संबंधित होती है।

मिथक को साहित्य की एक महत्वपूर्ण तकनीक माना गया है, जिसके माध्यम से अचेतन को प्रकाश में लाया जाता है तथा अनुभूति को प्रत्यक्ष करने में सहायता मिलती है। मिथक के माध्यम से इतिहास से जुड़ने की कलात्मक क्षमता भी काव्य में आती है। अत- मिथक अध्ययन का महत्व आज भी है और भविष्य में भी रहेगा।

14.6 प्रतीक

प्रतीक ऐसा शब्द चिह्न है, जो किसी वस्तु का बोध कराता है। कल्पना से बिम्ब जन्म लेता है और बिम्बों से प्रतीक उत्पन्न होता है। जब कल्पना मूर्त रूप धारण करती है तब बिम्ब की सृष्टि होती है और जब बिम्ब व्युत्पन्न अथवा बार-बार प्रयुक्त होने से किसी निश्चित अर्थ में निर्धारित हो जाता है तब प्रतीक का निर्माण होता है। जब एक ही शब्द अप्रस्तुत या किसी सम्पूर्ण अर्थ सन्दर्भ को व्यंजित करने की शक्ति अर्जित कर लेता है, तब वह प्रतीक बन जाता है। जिस कलाकार में जितनी अधिक सघन सहजानुभूति एवं विभावन की क्षमता होगी, उतना ही वह उत्कृष्ट प्रतीकों की सृष्टि कर सकेगा। वस्तुत: प्रतीक किसी सूक्ष्म भाव, विचार या अगोचर तत्व को साकार करने के लिए उपयोग में लाया जाता है। प्रतीक शब्द रूप में किसी अन्य अर्थ की व्यंजना करता हैं, यथा- 'काहे री नलिनी तू कुम्हिलानी।' इस पंक्ति में 'नलिनी' जीवात्मा का प्रतीक है। यहाँ नलिनी का शब्दार्थ न लेकर प्रतीकार्थ ग्रहण किया गया है। प्रतीक की निम्न विशेषताएं होती हैं-

- प्रतीक अप्रस्तुत को प्रस्तुत करता है।
- वह मन में किसी भावना को तुरन्त जाग्रत कर देता है।
- उस पर युग, देश, संस्कृति तथा मान्यताओं की छाप रहती है।
- कवियों द्वारा प्रयुक्त प्रतीक प्रारम्भ में व्यक्तिगत होते हैं, पर धीरे-धीरे वे रूढ़ हो जाते हैं।

प्रतीकों के भेद अनेक आधारों पर निम्न रूप से बताए गए हैं-

1. **भावोत्प्रेरक प्रतीक :** जिसमें भाव या राग की प्रधानता होती है। जैसे- कमल, चन्द्रमा, कुमुदिनी आदि।
2. **विचारोत्पादक प्रतीक :** जिनमें वैचारिकता प्रमुख होती है। जैसे- राम-आदर्श चरित्र के प्रतीक, गाँधीजी- सत्य, ईमानदारी के प्रतीक।
3. **वैयक्तिक प्रतीक :** कवि के निजी प्रतीक जो उसकी अनुभूति पर आधारित होते हैं। जैसे- कबीर द्वारा प्रयुक्त नलिनी जीवात्मा का प्रतीक है।
4. **परम्परामुक्त प्रतीक :** ये प्रतीक नवीनता लिए हुए होते हैं। नई कविता के प्रतीक इसी वर्ग के हैं। यथा- साँप-ईर्ष्यालु प्रवृत्ति का प्रतीक है।
5. **परम्परागत प्रतीक :** वे प्रतीक जो परम्परा से चले आ रहे हैं। जैसे- हंसा जीवात्मा का प्रतीक है।
6. **भावपरक प्रतीक :** ये शब्दाश्रित न होकर भावाश्रित होते हैं। छायावादी प्रतीक इसी कोटी के हैं।
7. **व्याख्यात्मक प्रतीक :** इनका चयन गुणों एवं विशेषताओं के कारण किया जाता है। सिंह, वीरता का प्रतीक तथा गीदड़, कायरता का प्रतीक है।
8. **प्रकृतिपरक प्रतीक :** प्राकृतिक उपादानों से लिए गए प्रतीक। जैसे- कमल, चाँदनी

आदि इसी प्रकार के प्रतीक हैं।

डॉ. नगेन्द्र के अनुसार - 'उपमान जब किसी पदार्थ विशेष के लिए रूढ़ हो जाता है, तब प्रतीक बन जाता है।' ऐसे प्रतीकों को स्थिर प्रतीक कहते हैं।

प्रतीक काव्य भाषा का तत्व है, जो भावों की अभिव्यक्ति को सबल बनाता है और भावों को मूर्त रूप प्रदान करता है।



अपनी प्रगति जांचें

प्रश्न 1. नयी समीक्षा की मूलभूत आधार क्या है? सतर्क विचार कीजिए।

14.7 बिम्ब

बिम्ब शब्द अंग्रेजी के (Image) इमेज का हिन्दी रूपान्तर है, जिसका अर्थ है- किसी पदार्थ को मूर्त रूप प्रदान करना। जो कल्पना द्वारा ऐन्द्रिक अनुभवों के आधार पर निर्मित होता है, वह शब्द चित्र बिम्ब माना जाता है। डॉ. नगेन्द्र के अनुसार- 'काव्य बिम्ब शब्दार्थ के माध्यम से कल्पना द्वारा निर्मित एक ऐसी मानस छवि है, जिसके मूल में भाव की प्रेरणा रहती है।'

सी.डी.लेविस का मत है कि- 'काव्य बिम्ब एक ऐसा भावात्मक चित्र है जो रूपक आदि का आधार ग्रहण कर भावनाओं को तीव्र करता हुआ काव्यानुभूति को सादृश्य तक पहुँचाने में समर्थ होता है।'

काव्य बिम्ब का मुख्य कार्य संप्रेषणीयता है। वह कलाकार की अनुभूति और प्रमाता के बीच संबंध स्थापित करने वाला सूत्र है। काव्य भाषा के लिए बिम्ब अनिवार्य है। ये भावानुभूतियों को चाक्षुष रूप प्रदान करते हैं तथा काव्य में आकर्षण उत्पन्न करते हैं। बिम्ब के तीन मूलभूत तत्व हैं- कल्पना, भाव, ऐन्द्रिकता।

बिम्ब के निम्न गुण होते हैं -

- भावनाओं को उत्तेजित करने की शक्ति एवं सामर्थ्य।
- नवीनता एवं ताजगी।
- प्रसंग के प्रति अनुकूलता एवं सार्थकता।
- सजीवता अर्थात बिम्ब इतना स्पष्ट होना चाहिए कि प्रमाता तुरन्त ऐन्द्रिक साक्षात्कार कर सकें।

बिम्बों के अनेक भेद विद्वानों ने विभिन्न आधारों पर किए हैं, जिनमें से प्रमुख हैं :

1. **ऐन्द्रिक बिम्ब :** इसके अन्तर्गत- चाक्षुष बिम्ब, श्रव्य या नादात्मक बिम्ब, स्पर्श बिम्ब, घ्रातव्य बिम्ब, आस्वाद्य बिम्ब आदि आते हैं।

2. **काल्पनिक बिम्ब :** स्मृति बिम्ब, कल्पित बिम्ब।
3. **प्रेरक अनुभूति के आधार पर**- सरल बिम्ब, मिश्रित बिम्ब, तात्कालिक बिम्ब, संकुल बिम्ब, भावातीय बिम्ब, विकीर्ण बिम्ब।
4. **अभिव्यंजना पद्धति के आधार पर** - प्रत्यक्ष बिम्ब, अलंकृत बिम्ब।

एजरा पाउण्ड के अनुसार - 'बिम्ब बौद्धिक और भावात्मक संसृष्टि को उपस्थित करता है। वह सम्प्रेक्षित भाव को तीव्रतर बनाता है तथा किसी अनुभूति को प्रतिबिम्बित ही नहीं करता अपितु उसे एक नए स्तर पर पुननिर्मित भी करता है।'

बिम्ब का एक अन्य महत्वपूर्ण कार्य है- काव्य भाषा को संक्षिप्त, केन्द्रित और संघटित करना। शब्द की अपेक्षा बिम्ब अधिक सन्दर्भ सापेक्ष होता है।

डॉ. केदारनाथ सिंह के अनुसार- 'बिम्ब यथार्थ का एक सार्थक टुकड़ा होता है। वह अपनी ध्वनियों और संकेतों से भाषा को अधिक संवेदनशील और पारदर्शी बनाता है। वह अभिधा की अपेक्षा लक्षणा और व्यंजना पर आधारित होता है।'

युग ने 'आदि-बिम्ब' का उल्लेख किया है। उसके अनुसार इनका संबंध मनुष्य के चिन्तन और संवेदना से है। ये बिम्ब क्रम से पीढ़ी दर पीढ़ी परिवार और समाज के दीर्घ आनुवंशिक संस्कारों से लिप्त होकर चले आते हैं। इनमें आशु साधारणीकरण का गुण रहता है, क्योंकि ये सामूहिक अवचेतन से उत्पन्न होते है।

उदाहरण के लिए मर्यादापालन की दृष्टि से राम, रसिकता की दृष्टि से कृष्ण, वीरता की दृष्टि से अभिमन्यु, शारीरिक बल की दृष्टि से भीम आदि समग्र हिन्दू जाति के लिए ऐसे ही बिम्ब है।



14.8 सारांश

नयी समीक्षा की सबसे बड़ी सीमा यह है कि वह जीवन और काव्य के सम्बन्ध का निषेध करती है। काव्य के सौन्दर्य पक्ष की प्रतिष्ठा के लिए अर्थवाद के रूप में तो एक सीमा तक यह ग्राह्य हो सकता है, किन्तु मूलत: यह सिद्धान्त गलत है। काव्यार्थ और जीवन के अनुभवों के बीच संवाद अनिवार्य है, इस संवाद के अभाव में काव्य की सार्थकता ही नष्ट हो जाएगी। फैंटेसी के तीन प्रयोजन माने जाते हैं। मनोरंजन, यथार्थ से पलायन और दोषयुक्त मानव तथा दोषयुक्त संसार के प्रति नवीन दृष्टिकोण से विचार करना। जबकि मुक्तिबोध की कविताओं में प्रयुक्त फैंटेसी का उद्देश्य मानव एवं संसार के प्रति नवीन दृष्टिकोण है। मिथक का निर्माण काल प्रवाह के सहारे धीरे-धीरे अपने विकास क्रम में होता है। इसी मिथक युगों की मनोभावनाओं, सांस्कृतिक मूल्यों और आदर्शों का संवाहक होता है। युग के लिए अनुपादेय या बासी पड़ रहे मूल्यों को मिथक झाड़कर फेंक देता है और युग की नवीन मान्यताओं को अपने अन्दर समाहित

कर लेता है। प्राचीन समय में मिथक, प्रतीक, बिम्ब आदि को काव्य का बाह्य अलंकरण समझ उनका अध्ययन किया जाता था, उन्हें कृति से अलग कर कृति की श्रीवृद्धि में उनके योगदान की दृष्टि से उनका मूल्यांकन किया जाता था। पर आज यह माना जाता है कि कृति का केन्द्रीय अर्थ उन बिम्बों, प्रतीकों एवं मिथकों में छिपा है जिनका प्रयोग उस रचना में हुआ है और वे बाह्य अलंकरण मात्र न होकर कथ्य और रूप के बीच एकसूत्रता स्थापित करने वाले उपकरण, कृति के अभिन्न अंग एवं कवि के अचेतन को उद्घाटित करने वाले माध्यम हैं।

14.9 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न 1 का उत्तर : नयी समीक्षा शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम स्पिनगार्न ने सन् 1911 ई. में किया, पर उसकी परिभाषा देने का श्रेय जॉन क्रोरेन्सम को है, जिन्होंने अपनी पुस्तक The New Criticism में उसकी व्याख्या की। यही से 'नयी समीक्षा' प्रतिष्ठित हुई।

अधिक जानने के लिए 'नयी समीक्षा' को ध्यानपूर्वक पढ़ें।

14.10 अधिक जानने के लिए पढ़े

1. ऑस्टिन वारेन एवं रेनेवेलेक- साहित्य सिद्धान्त, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
2. नामवर सिंह - आलोचना और विचारधारा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. करुणाशंकर उपाध्याय- पाश्चात्य काव्य-चिन्तन, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।

14.11 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रश्नों के उत्तर लिखिए :

1. 'नयी समीक्षा' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग किसने किया था?
2. बिम्ब किसे कहते हैं?

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए :

1. नयी समीक्षा की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
2. फैंटेसी क्या है? फैंटेसी की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
3. मिथक की स्वरूप पर प्रकाश डालिए।
4. प्रतीक क्या है? उसकी विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
5. बिम्ब क्या है? उसके भेदों पर प्रकाश डालिए।

*** ***** ***